श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीमनःशिक्षा

[श्रीमद् रघुनाथदास गोस्वामी विरचित]

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर कृत भजन–दर्पण–भाष्य सहित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा अनूदित तथा सम्पादित एवं उन्हींके द्वारा लिखी गयी
श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति सहित

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्रकाशक—
श्रीमान् विजयकृष्ण ब्रह्मचारी

चतुर्थ संस्करण—१०,००० प्रतियाँ
श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आविर्भाव तिथि
श्रीचैतन्याब्द ५२२
७ फरवरी २००९

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰ प्र॰)
०५६५-२५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
०५६५-२४४३२७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकुण्ड रोड
गोवर्धन (उ॰ प्र॰)
०५६५-२८१५६६८

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰ बं॰)
०९३३३२२२७७५

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११-२५५३३५६८

खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
०५६५-२४४३१०१

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

प्रस्तावना

अस्मदीय परमाराध्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी कृपासे आज आधुनिक कालमें लुप्तप्राय भक्ति-भागीरथीके पुनः प्रवर्त्तक श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर कृत भजन-दर्पण-भाष्यके भावानुवाद 'श्रीभजन-दर्पण-दिग्दर्शिनी-वृत्ति' के सहित, श्रीरूपानुगवर श्रीरधुनाथदास गोस्वामी रचित 'श्रीमनःशिक्षा' के हिन्दी-संस्करणको श्रद्धालु पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार प्रसन्नता हो रही है।

'मनःशिक्षा' श्रीगौरपरिकर श्रीरघुनाथदास गोस्वामी द्वारा रचित मनको शिक्षा देनेवाले एकादश श्लोकोंकी समष्टि है। ये श्लोकसमूह रचयिताके स्वरचित प्रार्थना और लालसात्पक सारे स्तव-स्तोत्रके संग्रह-ग्रन्थ 'श्रीस्तवावली' से उद्धृत किये गये हैं। श्रीदास गोस्वामीने मनःशिक्षाके इन एकादश श्लोकोंमें श्रीराधाकृष्णके मिलित प्रेममय-विग्रह श्रीगौरसुन्दर, उनके अन्तरङ्ग प्रिय परिकर श्रीस्वरूप दामोदर एवं रसाचार्य श्रीरूपगोस्वामीकी शिक्षाओंका सार गागरमें सागरकी भाँति भर रखा है।

श्रीबृहद्भागवतामृत, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, षट्सन्दर्भ और श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि गौड़ीय भक्तिसाहित्यमें भक्तिकी तीन अवस्थाएँ बतालायी गयी हैं—साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमाभक्ति। साधनभक्ति भी वैधी और रागानुगाके भेदसे दो प्रकार की है। वैधी साधनभक्तिसे उत्पन्न भाव और उस भावसे उदित प्रेम ऐश्वर्य-ज्ञान प्रधान होता है। किन्तु रागानुगीय साधनभक्तिसे उत्पन्न भाव और उससे उदित प्रेम ऐश्वर्य-गन्धसे रहित माधुर्य-प्रधान होता है। ऐसे ऐश्वर्य या गौरव-गन्ध-वर्जित माधुर्य-प्रधान प्रेमसे ही श्रीव्रजेन्द्रनन्दन एवं श्रीमती वृषभानुनन्दिनीरूप युगल-किशोरके चरणकमलोंकी प्रेममयी सेवा-परिचर्या प्राप्त हो सकती है। ऐश्वर्य-प्रधान प्रेम

वैकुण्ठ–प्रापक होता है। इस प्रकार वैधी साधनभक्ति और रागानुगा साधनभक्तिसे उदित भाव और प्रेममें एक सूक्ष्म भेद है। श्रीगौड़ीय–वैष्णव आचार्योंकी विचार–धाराका यह मौलिक–वैशिष्ट्य है—

सकल जगते मोरे करे विधि–भक्ति।
विधि–भक्त्ये व्रजभाव पाइते नाहि शक्ति॥

ऐश्वर्य ज्ञानेते सब जगत मिश्रित।
ऐश्वर्य–शिथिल प्रेमे नाहि मोर प्रीत॥

ऐश्वर्य ज्ञाने विधि भजन करिया।
वैकुण्ठके जाय चतुर्विध मुक्ति पात्रा॥

(चै॰ च॰ आ॰ ३/१५–१७)

इष्ट विषयमें जो स्वाभाविक परम आवेशपूर्ण अनुरक्ति होती है, उसे राग कहते हैं। वैसे रागसे युक्त जो श्रीकृष्णकी रागमयी भक्ति होती है, उसे रागात्मिका भक्ति कहते हैं। उस रागात्मिका भक्तिकी अनुगामिनी भक्तिको रागानुगाभक्ति कहते हैं। रागात्मिक जनोंके भावोंकी प्राप्तिके लिए लोभ होना ही रागानुगाभक्तिका अधिकार है। ऐसी रागानुगाभक्ति साधकोंको यथावस्थित देहके द्वारा तथा अन्तश्चिन्तित अभीष्ट कृष्णसेवोपयोगी देहके द्वारा व्रजमें सर्वदा वास करते हुए, श्रीकृष्णका तथा उनके व्रजस्थ प्रियतम जनोंका स्मरण करते हुए, निरन्तर श्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवा–परिचर्या करनी चाहिये। व्रजमें निरन्तर वास करते हुए, व्रजानुरागी रसिक भक्तोंके अनुगमनपूर्वक श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला–कथाओंका श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करना ही रागानुगीय भक्तिसाधकोंकी परिपाटी है। वैधीभक्तिके विषयमें जिन श्रवण–कीर्त्तन आदि अङ्गोंका वर्णन किया गया है, उनमेंसे अपनी भावनाके अनुकूल अङ्गोंका अनुष्ठान रागानुगीय साधनमार्गमें भी ग्रहणीय है।

यह जान लेना आवश्यक है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुने जगत्‌के जीवोंके लिए जो शिक्षा दी है, उसका अनुसरण करनेसे साधकके हृदयमें सहसा रागानुगा होनेकी लालसा उत्पन्न होती है। रागमार्ग द्वारा भजन ही श्रीचैतन्यदेवके द्वारा आचरित, प्रचारित और आस्वादित है। जीवोंके सौभाग्यसे यदि उन्हें श्रीगौराङ्गदेवके कृपापात्र प्रियजनोंका सङ्ग मिल जाये, तो उन्हें व्रजजनोंके भावके प्रति अवश्य ही लोभ उत्पन्न होगा। जब तक ऐसा सङ्ग नहीं मिलता, तब तक अधिकांश साधक वैधीभक्तिका ही अवलम्बन करते हैं; और ऐसा होना भी चाहिये। श्रीचैतन्यदेवके चरणोंका आश्रय करनेसे रागमार्गमें प्रवेश अवश्य ही होगा। रागमार्गमें लुब्ध साधकके लिए पहले रागानुगाभक्तिका साधन करना कर्त्तव्य है। रागानुगाभक्तिके लिए जो अधिकार होता है, वह अत्यन्त उच्च होता है। व्रजवासिजनोंके भावके प्रति लोभ उत्पन्न होनेपर इतर विषयोंमे रुचि नहीं रहती तथा पाप-पुण्य, कर्म, अकर्म, विकर्म, ज्ञान, योग और वैराग्यसे छुटकारा मिल जाता है।

वैधमार्गमें सर्वप्रथम श्रद्धा होती है। उसके बाद साधुसङ्ग, तत्पश्चात् भजन द्वारा अनर्थोंकी निवृत्ति होती है। तदनन्तर क्रमशः निष्ठा, रुचि, आसक्ति और भाव उदित होता है। इसमें भाव चिरकाल साध्य बना रहता है। परन्तु लोभ उत्पन्न होनेपर इतर विषयोंमें लोभका अभाव होनेके कारण अत्यन्त सहज ही अनर्थसमूह नष्ट हो जाते हैं। भाव भी इस लोभके साथ-साथ उदित हो पड़ता है। रागमार्गमें केवल आभास, कपटता, प्रतिष्ठाशा आदिको दूर करना आवश्यक है। यदि ये दूर न हों, तो उनसे विषम-विकार और अनर्थोंकी वृद्धि होती है। ऐसी स्थितिमें भ्रष्ट राग ही विशुद्ध राग है—ऐसी प्रतीति होती है; और अन्तमें विषय-सङ्ग प्रबल होकर साधककी अधोगतिका कारण बन जाता है।

रागानुगाभक्तिका नामान्तर रूपानुगाभक्ति है। बिना रूपानुगा हुए रागानुगामें प्रवेश पाना असम्भव है। यदि किसी सौभाग्यसे किसी

व्यक्तिको रागानुगाभक्तिमें प्रवेश करनेकी तीव्र लालसा हो, तो उसे प्रधान रूपानुगवर श्रीदास गोस्वामीके इस मनःशिक्षाका अवश्य ही अनुशीलन और अनुसरण करना चाहिये।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका संक्षिप्त जीवन-चरित्र

लगभग १४१६ शकाब्दमें पश्चिम बङ्गालके हुगली जिलाके अन्तर्गत कृष्णपुर (सप्तग्राम) नामक ग्राममें एक सम्भ्रान्त और धनाढ्य जमींदार कायस्थ कुलमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका आविर्भाव हुआ था। पिताका नाम श्रीगोवर्धन मजुमदार था। श्रीगोवर्धनके बड़े भाईका नाम हिरण्य मजुमदार था। वे दोनों भाई वैभवशाली जमींदार होनेपर भी धर्मप्राण और साधु वैष्णवोंके प्रति श्रद्धासम्पन्न व्यक्ति थे। इनके गुरु और राजपुरोहित श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीअद्वैताचार्यके अन्तरङ्ग शिष्य और श्रीहरिदास ठाकुरके परम प्रिय बन्धु थे। ये श्रीयदुनन्दन आचार्य ही श्रील रघुनाथदासके दीक्षागुरु थे।

बचपनमें श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीयदुनन्दन आचार्य जैसे शुद्ध भक्तोंके सङ्ग तथा प्रारम्भिक युवावस्थामें सपरिकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके दर्शनोंके प्रभावसे इनपर शुद्धाभक्तिका गहरा रङ्ग चढ़ गया। वे शीघ्र ही इन्द्रके समान विपुल ऐश्वर्य एवं अप्सराके समान रूपवती भार्याको छोड़कर पुरीधाममें श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके श्रीचरण-प्रान्तमें उपस्थित हुए। श्रीमन् महाप्रभुजीने इन्हें अपने द्वितीय-स्वरूप श्रीस्वरूपदामोदरके हाथोंमें सौंप दिया। तबसे वे 'स्वरूपके रघु' नामसे परिचित हुए तथा श्रीस्वरूप गोस्वामीकी कृपासे ही उन्होंने श्रीगौरसुन्दरकी अन्तरङ्ग-सेवामें अधिकार प्राप्त किया। इनकी आदर्श वैराग्यपूर्ण भजन-निष्ठासे श्रीगौरसुन्दरने बहुत सन्तुष्ट होकर श्रीगोवर्धन शिलारूपी गिरिधारी और गुञ्जामालारूपिणी श्रीराधिकाकी सेवाका अधिकार प्रदान किया।

श्रीगौरसुन्दरकी अप्रकट-लीलाविष्कारके पश्चात् ये असह्य विरह-वेदनासे व्याकुल होकर श्रीगोवर्द्धन पर्वतके शिखरसे कूदकर

प्राण-त्यागका सङ्कल्प लेकर पुरीधामसे वृन्दावन उपस्थित हुए। किन्तु यहाँ श्रीरूप-सनातन गोस्वामीने अपनी मधुर कृष्णकथा और कृपारूप अमृत-सिंचनसे इनका सङ्कल्प परित्याग करवा दिया। अब वे उन दोनोंके तीसरे भाई बनकर श्रीराधाकुण्डके तटपर स्थायी रूपसे वास करते हुए अलौकिक सुतीव्र वैराग्यपूर्ण विप्रलम्भ भावसे श्रीराधागोविन्दके भजनमें आविष्ट रहने लगे। लगभग एक-सौ वर्ष की लम्बी आयु तक उसी प्रकार भजन करते-करते वहीं श्रीराधाकुण्डमें ही श्रीयुगलकी अप्रकटलीलामें प्रविष्ट हुए। वे व्रजलीलाकी 'रतिमञ्जरी' माने जाते हैं। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामीकी भजन-परिपाटीका वर्णन इस प्रकार किया है—

अन्न जल त्याग कैल अन्य कथन।
पल दुइ तिन माठा करेन भक्षण॥

सहस्र दण्डवत् करे, लय लक्ष नाम।
दुइ सहस्र वैष्णवेर नित्य परणाम॥

रात्रि दिने राधाकृष्णेर मानस-सेवन।
प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र कथन॥

तिन सन्ध्या राधाकुण्डे अपतित स्नान।
व्रजवासी वैष्णवेरे आलिङ्गन दान॥

सार्द्ध सप्त-प्रहर करे भक्तिर साधने।
चारि दण्ड निन्द्रा, सेह नहे कोन दिने॥

(चै॰ च॰ आ॰ १०/९८-१०२)

[श्रीरघुनाथदास गोस्वामी व्रजमें आनेपर श्रीरूप-सनातन गोस्वामीके निर्देशसे श्रीराधाकुण्डमें वासकर वहाँ विरहार्त्तिमय भजनमें आविष्ट रहने लगे। अन्न-जलका तो उन्होंने सम्पूर्ण रूपसे त्याग ही कर दिया था। प्राण-धारणके लिए प्रतिदिन केवलमात्र तीन-चार छटाँक मट्ठाका सेवन कर लेते थे। श्रीकृष्णकथाके अतिरिक्त

दूसरी ग्राम्य-कथाएँ न कहते थे और न ही सुनते थे। प्रतिदिन नियमित रूपसे श्रीनन्दनन्दन, श्रीमती वृषभानुनन्दिनी, उनके लीला-परिकरों तथा लीलास्थलियोंके उद्देश्यसे एक हजार दण्डवत्-प्रणाम करते, दो हजार प्रणाम वैष्णवोंके उद्देश्यसे करते थे। रात-दिन श्रीराधाकृष्णकी मानसीसेवा करते, एक प्रहर श्रीमन् महाप्रभुकी लीलाकथा वर्णन करते, श्रीराधाकुण्डमें प्रतिदिन तीन बार अवगाहन (स्नान) करते तथा नियमित रूपसे व्रजवासी वैष्णवोंको आलिङ्गन-दान करते थे। इस प्रकार दिन-रातके आठ प्रहरोंमेंसे साढ़े सात प्रहर भक्तिका साधन करते तथा केवलमात्र अर्द्ध प्रहर अर्थात् डेढ़ घण्टा शयन करते थे। वह शयन भी किसी-किसी दिन नहीं होता।]

इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) श्रीस्तवावली, (२) श्रीदानचरित (दानकेलि-चिन्तामणि), (३) श्रीमुक्ताचरित। प्रस्तुत मनःशिक्षा उनके रचित स्तव-स्तुतियोंके संग्रह-ग्रन्थ श्रीस्तवालीके अन्तर्गत है।

श्रीभजन दर्पण भाष्यकार श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

आधुनिक जड़-विज्ञानके चाकचिक्यपूर्ण भोग-प्रवण युगमें भक्ति-धाराके पुनःप्रवर्तक, श्रीगौरसुन्दरके नित्यपरिकर श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने श्रीमनःशिक्षाके श्लोकोंके ऊपर एक अतिशय निगूढ़-सिद्धान्तमूलक तथा रसपूर्ण भाष्यकी रचना की है। इस भाष्यमें इन्होंने प्रति श्लोकका श्रीरागानुग अर्थात् श्रीरूपानुग भक्तिका विश्लेषण करते हुए श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, स्तवमाला, स्तवावली आदि गोस्वामी-ग्रन्थोंके उद्धरणोंसे पुष्ट, रागानुगीय साधकोंके कल्याणके लिए आवश्यक भजन परिपाटीका निर्देश दिया है। इस लोकातीत उपकारके लिए रागानुगीय साधक समुदाय उनका चिर ऋणी रहेगा।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कलियुगपावनावतारी श्रीराधाभावद्युति-सुवलित शचीनन्दन श्रीगौरसुन्दरके अन्तरङ्ग परिकर हैं। ये

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट श्रीहरिनामसङ्कीर्त्तन एवं शुद्धाभक्तिका, विशेषतः श्रीरूपानुगा (रागानुगा) भक्तिका विश्वमें प्रचार-प्रसारके लिए जगतीतलमें अवतरित हुए थे। पश्चिम बङ्गालमें श्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत श्रीमायापुरके सन्निकट वीरनगर नामक ग्राममें एक उच्च शिक्षित-सम्भ्रान्त परिवारमें ये २ सितम्बर १८३८ ई॰ में आविर्भूत हुए थे। इनका तिरोधान कलकत्ता महानगरीमें २३ जून १९१४ ई॰ में हुआ था। इन्होंने संस्कृत, बँगला, हिन्दी, अँग्रेजी, उड़िया आदि विभिन्न भाषाओंमें लगभग १०० भक्तिग्रन्थोंकी रचना की है। इसलिए मनीषियोंने इन्हें सप्तम गोस्वामी और आधुनिक युगका भक्ति-भगीरथ कहा है। इन्होंने श्रीगौराविर्भाव-स्थली श्रीमायापुर योगपीठके प्रकाश, शुद्धाभक्तिके प्रभावशाली शोधपूर्ण भाषण, लेख और ग्रन्थोंके प्रकाश एवं गाँव-गाँवमें श्रीनाम-हाटकी स्थापना आदिके माध्यमसे विश्वभरमें श्रीरूपानुगभक्तिके प्रचार-प्रसारकी जो नींव डाली थी, उसका प्रत्यक्ष फल आज सर्वत्र देखा जा रहा है। आज विश्वके कोने-कोनेमें सर्वत्र ही श्रीगौर-कृष्णनाम सङ्कीर्त्तनकी ध्वनि गूँजती है, सुदूर पाश्चात्य एवं पूर्वीय देशोंमें भी गगनचुम्बी वैभवशाली मठ-मन्दिर स्थापित हो रहे हैं।

श्रीगौड़ीय सम्प्रदायैक संरक्षक, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति तथा समितिके अन्तर्गत श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता आचार्यकेशरी मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव, अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने स्वरचित ग्रन्थोंके अतिरिक्त श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर आदि पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका बँगला भाषामें पुनः प्रकाशन किया है। उनकी हार्दिक अभिलाषा, उत्साह दान और अहैतुकी कृपासे आज राष्ट्रीय भाषा हिन्दीमें भी जैवधर्म, श्रीचैतन्यशिक्षामृत, श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षा, श्रीशिक्षाष्टक आदि ग्रन्थोंके हिन्दी-संस्करण प्रकाशित हुए हैं तथा क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य मेरे परमपूज्य सतीर्थवर परिव्राजकाचार्यवर श्रीश्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजी एक पराविद्यानुरागी, श्रील गुरुपादपद्मके अन्तरङ्ग प्रिय

सेवक हैं। वे मेरे प्रति अनुग्रहपूर्वक श्रीश्रील गुरुदेवके श्रीकरकमलोंमें उनके इस प्रिय मनःशिक्षा ग्रन्थको समर्पणकर उनके मनोऽभीष्टको पूर्ण करें—इनके चरणोंमें यही विनीत प्रार्थना है।

ग्रन्थकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने, प्रूफ-संशोधन आदि विविध सेवा-कार्योंके लिए श्रीमान् शुभानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान् प्रेमानन्द ब्रह्मचारी, श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी और श्रीमान् अनङ्गमोहन ब्रह्मचारी आदिकी सेवा-प्रचेष्टा सराहनीय एवं विशेष उल्लेखयोग्य है। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी उनपर प्रचुर कृपाशीर्वाद वर्षण करें—यही उनके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भक्ति-पिपासु, विशेषतः व्रजरसके प्रति लुब्ध रागानुगाभक्तिके साधकजनोंमें इस ग्रन्थका समादर होगा और श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पाठकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेमधर्ममें प्रवेशाधिकार प्राप्त करेंगे। अन्तमें भगवत्करुणाके घनविग्रह परमाराध्य श्रीश्रील गुरुपादपद्म हमारे प्रति प्रचुर-कृपावारि वर्षण करें, जिससे हम उनकी मनोऽभीष्ट सेवामें अधिकाधिक अधिकार प्राप्त कर सकें—यही उनके कृष्णप्रेम प्रदानकारी श्रीचरणयुगलमें सकातर प्रार्थना है। अलमतिविस्तरेण।

श्रीगुरुपूर्णिमा
४९८ गौराब्द
(१९०६ भारतीयाब्द)
१३ जुलाई, १९८४ ई०

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी
दीन-हीन त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

सम्पादकीय वक्तव्य

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग और श्रीश्रीराधा–विनोदविहारीजीकी अनुकम्पासे 'मनःशिक्षा' ग्रन्थका यह चतुर्थ संस्करण पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। रागानुगीय परिपाटीसे भजन करनेवालोंको हिन्दी भाषामें इस ग्रन्थका अभाव बहुत ही खल रहा था। आशा है इससे उनकी अभिलाषा पूर्ण होगी।

इस ग्रन्थके चतुर्थ संस्करणके प्रकाशनमें श्रीमान् विजयकृष्ण ब्रह्मचारी तथा बेटी शान्ति दासी आदिकी सेवा–प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय है। श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारी इनपर शुभ दृष्टिपात करें, यही उनसे निवेदन करता हूँ।

वैष्णवदासानुदास
त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

॥ श्रीश्रीगान्धर्वागिरिधराभ्यां नमः ॥

श्रीमनःशिक्षा

प्रथम श्लोक

गुरौ गोष्ठे गोष्ठालयिषु सुजने भूसुरगणे
स्वमन्त्रे श्रीनाम्नि व्रजनवयुवद्वन्द्वशरणे।
सदा दम्भं हित्वा कुरु रतिमपूर्वमतितरा–
मये स्वान्तर्भ्रातश्चटुभिरयाचे धृतपदः ॥१॥

हे मेरे अबोध अन्तःकरण! मेरे प्यारे भैया मन! मैं तुम्हारे चरणोंको पकड़कर नम्रतापूर्वक प्रिय वचनों द्वारा यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम सर्वतोभावेन दम्भका परित्यागकर अपने श्रीगुरुदेवमें, श्रीव्रजधाममें, श्रीव्रजवासीजनोंमें, श्रीवैष्णवजनोंमें, भूसुर (ब्राह्मणों) में, श्रीभगवन्नाममें तथा व्रजके नित्य नवीन किशोर–किशोरी श्रीश्रीराधाकृष्ण–युगलके शरणमें शीघ्र ही नैरन्तर्यमयी लोकोत्तर रतिका विधान करो।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

मङ्गलाचरण

नमः ॐ विष्णुपादाय आचार्यसिंहरूपिणे।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव इति नामिने॥

अतिमर्त्यचरित्राय स्वाश्रितानाञ्चपालिने।
जीवदुःखे सदार्त्ताय श्रीनामप्रेमदायिने॥

सर्वप्रथम मदीय आराध्यतम नित्यालीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीके श्रीचरणकमलोंकी

वन्दना करता हूँ, जिनकी अहैतुकी कृपालेशसे सर्वथा अयोग्य होते हुए भी 'मनःशिक्षा' एवं उसके 'भजनदर्पण' नामक संस्कृत-बँगला मिश्र भाष्यकी 'दिग्दर्शिनीवृत्ति' नामक भावानुवाद करनेमें प्रवृत्त हो रहा हूँ। तदनन्तर भाष्यकार श्रीभक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रीमनःशिक्षाके रचियता श्रीरूपानुगवर, छः गोस्वामियोंमें अन्यतम श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके चरणकमलोंमें प्रणत होकर उनकी कृपा-प्रार्थना करता हूँ।**—(अनुवादकका मङ्गलाचरण)**

श्रीश्रीगुरुचरणेभ्यो नमः। श्रीश्री चैतन्यचैन्द्राय नमः। श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।

जो समस्त सांसारिक बन्धनोंको काटकर कलियुग पावनावतारी श्रीशचीनन्दन गौरहरिके श्रीपदारविन्दोंमें एकान्त रूपसे शरणागत हुए थे और जिन्हें श्रीमन् महाप्रभुके आदेशसे श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामीने भक्तिके निगूढ़ रहस्योंकी शिक्षा प्रदान की थी, उन जगद्वरेण्य श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके श्रीचरणकमलोंमें दण्डवत्-प्रणाम करके उनके द्वारा रचित श्रीमनःशिक्षाका 'भजनदर्पण' नामक भाष्य लिख रहा हूँ। 'श्रीमनःशिक्षा' के ये द्वादश श्लोक श्रीगौड़ीय-वैष्णवोंके प्राणधन हैं। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीने अपने मनको लक्ष्य करके समस्त गौड़ीय वैष्णवोंको ही शिक्षा दी है।

बड़े सौभाग्यसे जन्म-जन्मान्तरोंकी सुकृति पुंजीभूत होनेपर जिस समय जीवोंके हृदयमें भगवत्-विषयिनी श्रद्धा उदित होती है, उस समय उनके लिए जो-जो नितान्त कर्त्तव्य हैं, इस छोटी-सी पुस्तिकामें उन सबका उपदेश किया गया है। यहाँ मूल-श्लोकके प्रत्येक पदका गूढ़ तात्पर्य दिया जा रहा है।

(१) श्रीगुरु—सब प्रकारके अनर्थोंको पूर्ण रूपसे दूरकर श्रीकृष्ण-सम्बन्धज्ञानको प्रदान करनेवाले भागवत-श्रेष्ठको 'दीक्षागुरु' एवं श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलके भजनकी शिक्षा देनेवाले भागवत-श्रेष्ठको 'शिक्षागुरु' कहते हैं। इन दोनोंको श्रीकृष्णका अभिन्नस्वरूप और अतिशय प्रियपात्र जानकर प्रीतिपूर्वक इनकी मनोऽभीष्ट सेवा

करनी चाहिये। समस्त शास्त्रोंमें श्रीगुरुदेवको सर्वदेवमय एवं नित्य भगवत्प्रकाश-विग्रह माना गया है। अतएव इनमें मनुष्य बुद्धिका कदापि आरोप नहीं करना चाहिये। उनमें सदैव उपास्य भाव रखना चाहिये।

(२) **श्रीव्रजधाम—**श्रीगोकुल, श्रीवृन्दावन, श्रीनन्दगाँव, श्रीबरसाना, श्रीजावट, श्रीगोवर्धन, श्रीश्यामकुण्ड और श्रीराधाकुण्ड आदि व्रजमण्डलके सभी लीलास्थल, जहाँपर श्रीयुगलकी नित्यलीलाएँ होती हैं, उन सबका श्रीव्रजधाम पदसे बोध होता है। व्रजधाममें प्रीति रखनेका गूढ़भाव यह है कि कोई-कोई ऐसा सन्देह कर सकते हैं कि भगवद्भजनमें ही शास्त्रोंका तात्पर्य है; अतः जहाँ कहीं भी रहकर भजन हो सकता है। फिर व्रजवाससे ही क्या प्रयोजन है? इसके लिए कहते हैं कि ऐसी विपरीत बुद्धिको छोड़कर व्रजमें ही विशेष अनुराग रखना चाहिये। यदि शरीरके द्वारा व्रजवास सम्भव नहीं है, तो मनके द्वारा भी प्रीतिपूर्वक व्रजमें निवासकर भजन करना चाहिये।

(३) **श्रीव्रजवासीजन—**श्रीयुगलसेवाके लिए जो भक्तजन व्रजमें निवास करते हैं, वे शुद्ध भक्तमात्र व्रजवासी हैं, क्योंकि वे लोग भोग और मोक्षकी तो बात ही क्या, वैकुण्ठवासकी लालसाका भी परित्यागकर श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलकी सेवाके लिए शरीर और मनसे व्रजमें वास करते हैं। ये सभी उत्तम भागवत हैं। उनकी कृपाके बिना रागानुगाभक्तिमें प्रवेश सम्भव नहीं है। मैं सदाचारी, तत्त्वज्ञ भगवद्भक्त हूँ, उन लोगोंसे मैं किसी भी विषयमें कम नहीं हूँ—ऐसा दम्भ छोड़कर व्रजवासीजनोंके प्रति प्रीति रखनी चाहिये।

(४) **सुजन—**चारों वैष्णव-सम्प्रदायों अथवा उनकी शाखाओंके आश्रित साम्प्रदायिक भगवद्भक्तजन, जो स्वरूपतः व्रजवास नहीं करते अर्थात् शरीरसे व्रजमें निवास करनेपर भी व्रजभावसे श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलकी अनुरागमयी सेवा नहीं करते, उन्हें यहाँ

सुजन कहा गया है। उनके प्रति भी हेयता या भेद-दृष्टि छोड़कर श्रद्धा रखनी चाहिये। ये मध्यम भागवत हैं।

(५) **भूसुरगण**—दैव-वर्णाश्रममें निष्ठासम्पन्न वैष्णवधर्मके शिक्षक ब्राह्मणगण ही भूसुर अर्थात् पृथ्वीके देवता हैं। ये कनिष्ठ भागवत हैं। इनके प्रति भी प्रीति रखनी चाहिये। श्रीमद्भागवतमें स्वयंभगवान् श्रीकृष्ण सम्राट नृग प्रसङ्गमें द्वारकावासियोंको समझा रहे हैं "विप्रं कृतागसमपि नैव द्रह्यत मामकाः। घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः॥" (श्रीमद्भा॰ १०/६४/४१) अर्थात् मेरे प्रियजनो! अपराधी ब्राह्मणसे भी द्वेष मत करो, चाहे वह ताड़ना करता रहे या शाप देता रहे, तो भी उसे नित्य नमस्कार करते रहो। अतः इनके प्रति द्वेष या अवज्ञाका भाव नहीं रखनी चाहिये।

(६) **स्वमन्त्रे**—श्रीगुरुदेवसे प्राप्त मन्त्र ही स्वमन्त्र या अपना मन्त्र है। विशेष प्रीतिपूर्वक श्रीगुरुदेव द्वारा बतलायी गयी विधिके अनुसार नियमित रूपसे स्वमन्त्रका जप आदि करना चाहिये।

(७) **श्रीहरिनाम**—श्रीहरि, श्रीकृष्ण, गोविन्द, गोपीनाथ, राधाकान्त आदि मुख्य नाम हैं। पतितपावन, परमात्मा, ब्रह्म आदि गौण नाम हैं। इनमें मुख्य नाम ही ग्रहणीय हैं। विशेषकर "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥" इस सोलह नामात्मक नाममन्त्रको कलियुगका महामन्त्र कहा गया है। अतः प्रीतिपूर्वक इसका जप और कीर्त्तन आदि करना चाहिये।

(८) **श्रीव्रजनवयुवद्वन्द्वकी शरण**—अनन्य भावसे श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलकिशोरके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेको ही शरण कहते हैं। "राधिकार दासी यदि होय अभिमान। शीघ्र मिलय तब गोकुल कान।"—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर।

(९) दम्भ छोड़कर—माया, छल, कपटता, अविद्या, कुटिलता और शठता आदिको दम्भ कहते हैं। भक्तिके अनुशीलनमें इष्टदेवकी प्रीतिवृद्धिके अतिरिक्त मनमें किसी प्रकारकी दूसरी आशा या कामनाका होना ही कपटता है। भक्तिसाधनामें कर्म, ज्ञान और योग आदिकी प्रधानता होनेसे अविद्याका भाव रहनेपर वही मायाच्छन्नता है। इन सबका यत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये। शुद्धभक्तिका आश्रय लेनेसे वर्णाश्रम, जड़ लालसा और स्वरूप-भ्रम—इन तीनोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले सभी प्रकारके दम्भ दूर हो जाते हैं।

(१०) अपूर्व रति—आत्म-रति ही शुद्ध-रति है। जीव स्वरूपतः कृष्णदास है। उसके शुद्ध स्वरूपमें शुद्ध कृष्ण-रति है। परन्तु कृष्ण-विमुख मायाबद्ध जीवोंकी रति जड़ीय नश्वर पदार्थोंमें होती है। मायासम्बन्धसे यह परिवर्त्तित रति आगन्तुक एवं दुःखदायी होती है। शुद्ध कृष्णभक्तिमें ही आत्मरतिकी स्थिति है अर्थात् शुद्ध कृष्णप्रेम ही आत्मरति है, क्योंकि श्रीकृष्ण ही सभी आत्माओंके आत्मा हैं। वृद्धावस्थामें वह शुद्ध आत्मरति जितनी ही अधिक रूपमें उदित होती है, वह उतनी ही अधिक अपूर्व रति है।

(११) शीघ्र विधान करो—विशेष व्याकुलताके साथ आत्मरतिका अवलम्बन करो। यदि भाग्यमें भक्ति होगी, तो अपने-आप ही हो जायेगी—ऐसा सोचकर निश्चिन्त पड़े रहना उचित नहीं है। आत्मबल क्रमशः जितना अधिक प्रकाशित होगा, कर्मोंसे बना हुआ भाग्य भी उतने ही अधिक परिमाणमें क्षीण होता जायेगा और भगवान् एवं भक्तोंकी अवश्य ही कृपा होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

इस उपदेशका तात्पर्य यह है कि जब तक भक्तसङ्गके प्रभावसे कर्म-वासना क्षीण नहीं होती, तब तक श्रद्धा उत्पन्न नहीं

होती और जब तक दृढ़ विश्वासरूपी श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती, तब तक हरिकथा तथा सदुपदेश श्रवण एवं ग्रहणकी योग्यता भी नहीं होती। सौभाग्यवश पारमार्थिक श्रद्धा उत्पन्न होनेपर सर्वप्रथम दीक्षागुरुके शरणागत होकर श्रीयुगल-मन्त्र ग्रहण करो। मन्त्र लेकर दीक्षागुरु और शिक्षागुरुओंकी आत्मरति द्वारा पूजा करो। श्रीगुरुदेवको मुनि समझकर केवल सम्मान देकर ही सन्तुष्ट न होओ, अपितु अपना परम हितैषी प्राणबन्धु समझकर प्रीतिपूर्वक सेवा-शुश्रूषा भी करो। कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम—इन त्रिविध वैष्णवोंका यथायोग्य सम्मान और प्रीतिपूर्वक सेवा-सत्कार करना चाहिए। साथ ही श्रीगुरु-प्रदत्त मन्त्र और हरिनाममें अनुराग भी रखना चाहिए। श्रीराधाकृष्ण युगलको ही अपना प्राणस्वरूप समझकर उनके श्रीचरणकमलोंमें शरणागत होना चाहिए॥१॥

द्वितीय श्लोक

न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु
व्रजे राधाकृष्णप्रचुरपरिचर्यामिह तनु।
शचीसूनुं नन्दीश्वरपतिसुतत्वे गुरुवरं
मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्त्रं ननु मनः ॥२॥

हे मेरे प्यारे मन! श्रुतियोंमें कथित धर्म और अधर्म (पुण्यजनक धर्म और पापमूलक अधर्म) कुछ भी मत करो, बल्कि श्रुतियोंने चरम सिद्धान्तके रूपमें जिन्हें सर्वोपादेय चरम उपास्य एवं सर्वोपरि परमतत्त्व निर्धारित किया है, उन श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलकी प्रेममयी प्रचुर परिचर्या करो। श्रीराधाभाव-कान्ति सुवलित शचीनन्दन श्रीचैतन्य महाप्रभुको श्रीनन्दनन्दनसे अभिन्न तथा श्रीगुरुदेवको श्रीमुकुन्द-प्रेष्ठ (प्रिय) जानकर उनका सदा-सर्वदा स्मरण करो।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृति

पूर्वपक्ष—प्रथम श्लोकमें पूर्ण रूपसे दम्भको छोड़कर श्रीयुगल-किशोरकी अनन्य सेवाकी जो बात कही गयी है, उसमें कतिपय शङ्का यह है कि यदि सम्पूर्ण रूपसे दम्भका परित्यागकर श्रीकृष्णभक्तिका अनन्य रूपसे आश्रय किया जाये, तो जीवन-निर्वाह किस प्रकार होगा? क्योंकि नित्य नैमित्तिक कर्मरूप धर्म और अधर्मका आश्रय लिए बिना जीवन-निर्वाह सम्भव नहीं है। दूसरी शङ्का यह है कि यदि श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलका अनन्य भजन स्वीकार करते हैं, तो श्रीचैतन्य महाप्रभुको किस रूपमें ग्रहण किया जाये? क्योंकि श्रीमन् महाप्रभुका भी उपास्य रूपसे एक ही साथ भजन करते हैं, तो दो उपास्य होनेसे भजन अनन्य नहीं

रहा। तीसरी शङ्का यह है कि श्रीगुरुदेवका स्मरण किस भावनासे किया जाये? इन तीनों शङ्काओंका समाधान करते हुए कहते हैं—

(१) श्रुतियोंमें कथित धर्म—अधर्म कुछ भी मत करो—श्रुतियों और तदनुगत स्मृति आदि ग्रन्थोंमें धर्म और अधर्मका निरूपण किया गया है। मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह इन दोनोंकी श्रेणीमें आ जाता है। यदि धर्माधर्मका पूर्ण रूपसे निषेध किया जाये, तो क्षणभरके लिए भी जीवित रहना सम्भव नहीं है। अतः यहाँ श्रीरघुनाथदास गोस्वामीचरणने इन्द्रियों द्वारा किये जानेवाले समस्त कर्मोंका ही निषेध नहीं किया है। जगत्‌में दो प्रकारके लोग होते हैं—एक अज्ञ और दूसरे विज्ञ। अज्ञ पुरुष अनुशासनके बिना कोई भी कार्य नहीं करते, यदि करते हैं, तो वह अमङ्गलप्रद हो जाता है। ऐसे अज्ञ पुरुषोंके कल्याणके लिए ही वेदों तथा तदनुगामी स्मृतियोंमें धर्म और अधर्मके कार्योंका विभाजन किया गया है, जिससे वे सहज ही अशुभ कर्मोंसे दूर रहकर शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त हो सकें। दूसरे प्रकारके व्यक्ति, जो विज्ञ पुरुष हैं, वे स्वरूप ज्ञानसे सम्पन्न होते हैं। ऐसे विज्ञ पुरुषोंके लिए शास्त्रोंके अनुशासनात्मक वचन प्रयुक्त नहीं हैं। उनके लिए तो केवल आत्मरति, कृष्णरति या शुद्ध युगल परिचर्याका ही विधान है। इसलिए श्रीगोस्वामीचरणने उनके लिए ही वेदोक्त धर्माधर्मोंका त्यागकर केवलमात्र श्रीराधाकृष्ण-युगलकी प्रेममयी सेवा करनेका उपदेश किया है। साधकके जीवनमें जो भी आवश्यक कार्य हैं, वे भगवत्सेवामयी भावनासे ही किये जायँ। वर्णाश्रमनिष्ठ अवस्थामें वेद-विहित सारे कार्य भी भगवत्सेवाकी भावनासे ही होने चाहिये। गृहस्थभक्त घरमें श्रीठाकुर-सेवा प्रकाशकर धनोपार्जन, परिवारका पालन-पोषण, विषयोंकी रक्षा, गृह-निर्माण आदि सभी कार्योंको प्रभुका कार्य समझकर करें। अपनेको तो केवल प्रभुका सेवकमात्र समझें। उन्हें भूलकर भी भोक्ता बनकर कर्मफलोंको स्वयं आत्मसात् नहीं करना चाहिये। श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थमें कहे

गये श्राद्धादि कार्योंका अनुष्ठान भी भगवत्सेवाकी भावनासे करना चाहिये। अधिकारसम्पन्न पुरुषोंकी वर्णाश्रम निष्ठा दूर होनेपर उनके लिए स्वरूपतः व्रजवास और श्रीयुगलकी अनन्य सेवा-परिचर्या सहज हो जाती हैं। जिन लोगोंके लिए व्रजमण्डलमें निवास करना असम्भव है, वे अन्यत्र रहकर भी मनसे ही व्रजवास करेंगे।

(२) श्रीशचीनन्दनको श्रीनन्दनन्दनसे अभिन्न जानकर—संसारमें फँसे हुए विमुख जीवोंको श्रीहरिनाम और अनर्पित उन्नतोज्ज्वल-प्रेम प्रदान करनेके लिए श्रीनन्दनन्दन ही श्रीमती राधाके भाव और कान्तिको अङ्गीकार करके श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें अवतरित हुए हैं। ऐसी दशामें कोई-कोई यह शङ्का कर सकते हैं कि केवलमात्र श्रीराधाकृष्ण मिलित-विग्रह श्रीचैतन्य महाप्रभुकी ही सेवा-पूजा क्यों न की जाये, उसीसे तो युगलसेवा-पूजा हो जायेगी? अथवा श्रीराधाकृष्ण और श्रीचैतन्यमहाप्रभु दोनोंकी ही अलग-अलग सेवा-पूजा करनी उचित है? इस शङ्काका समाधान करते हुए जगद्गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं भक्तभावसे अवतरित होकर जब स्वयं कृष्णभक्तिका आचरणकर जीवोंको कृष्णभक्ति करनेका उपदेश कर रहे हैं, तो हमें उनके उपदेशानुसार श्रीराधाकृष्ण-युगलका ही भजन करना चाहिये। किन्तु श्रीयुगल-सेवा करनेसे पूर्व श्रीगुरुदेव और श्रीगौराङ्गका अवश्य ही स्मरण करना चाहिये। ऐसा नहीं करनेसे परमार्थ-सिद्धि नहीं होती। दूसरी बात यह है कि श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी स्वतन्त्र सेवा-पूजा करनेसे श्रीगौरसुन्दर और श्रीकृष्णमें अभेद बुद्धि नहीं रहती। अभेद बुद्धि होनेसे श्रीकृष्णकी सेवा-पूजामें ही श्रीचैतन्य महाप्रभुकी स्मृति बनी रहती है।

(३) श्रीगुरुदेवको मुकुन्द प्रेष्ठ जानकर—इसका तात्पर्य यह है कि गुरुदेव भव-बन्धनसे मुक्ति प्रदान करनेवाले श्रीमुकुन्दके अतिशय प्रियपात्र हैं। मेरा उद्धार करनेके लिए ही करुणावरुणालय श्रीकृष्णने अपने परम प्रिय परिकरको मेरे श्रीगुरुदेवके रूपमें

प्रेरित किया है—ऐसा समझना चाहिये। श्रीगुरुदेवको श्रीमती राधिकाकी 'प्रियसखी' समझना सर्वांगसुन्दर है।

यद्यपि शास्त्रोंमें "आचार्य मां विजानीयात्" (श्रीमद्भा॰ ११/१७/२७) के अनुसार श्रीगुरुदेवको जो भगवान्‌का स्वरूप कहा गया है, उसका तात्पर्य हरिभक्तिविलास आदिमें भगवान्‌का प्रिय अथवा भगवान्‌के समान परम पूजनीय बतलाया गया है। अन्यथा गुरुदेवको ही भगवान् मानकर केवल उन्हींकी पूजा करने तथा भगवान्‌को नहीं माननेसे अपराध होता है।

प्रथमं तु गुरुं पूज्य ततश्चैव ममार्चनम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत्॥
(हरिभक्तिविलास)

श्रीकृष्ण कहते हैं कि "पहले श्रीगुरुदेवकी पूजा करके पश्चात् मेरा पूजन करनेवाला भक्त सिद्धिको प्राप्त करता है, अन्यथा मेरा पूजन निष्फल हो जाता है।" इसके विपरीत जो दुर्बुद्धिपरायण दाम्भिक व्यक्ति श्रीगुरुदेवको छोड़कर केवल भगवान्‌का भजन-पूजन करता है, वह नराधम भगवान्‌का कोप-भाजन हो जाता है। जैसे—जो सूर्य जल-सम्पर्कसे युक्त कमलको विकसित करता है, वही सूर्य जल-सम्पर्कसे रहित कमलको सुखा देता है। यहाँ दृष्टान्तमें जल गुरु-स्थानीय है तथा सूर्य भगवत्-स्थानीय है—

नारायणोऽपि विकृतिं याति गुरोः प्रच्युतस्य दुर्बुद्धेः।
कमलं जलादपेतं शोषयति रविर्न पोषयति॥
(जयदाख्यान संहिता)

तृतीय श्लोक

यदीच्छेरावासं व्रजभुवि सरागं प्रतिजनु–
र्युवद्वन्द्वं तच्चेत् परिचरितुमारादभिलषेः।
स्वरूपं श्रीरूपं सगणमिह तस्याग्रजमपि
स्फुटं प्रेम्णा नित्यं स्मर नम तदा त्वं शृणु मनः ॥३ ॥

हे मेरे प्यारे मन! मेरी बात सुनो। देखो भैया! यदि तुम्हारी रागात्मिका भक्तिके साथ व्रजवासकी लालसा है तथा श्रीराधाकृष्णरूप नव–युगलकिशोरकी सेवा–परिचर्या प्राप्तिकी अभिलाषा है, तो तुम जन्म–जन्ममें श्रीस्वरूप गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी एवं श्रीसनातन गोस्वामी आदि श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके परम कृपापात्रोंका नित्य स्पष्ट रूपसे स्मरण करो और उन्हें प्रीतिपूर्वक प्रणाम करो।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

पूर्वपक्ष—यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जिस किसी भी सम्प्रदायके वैष्णवसे दीक्षा और शिक्षा ग्रहण करनेसे रागात्मिका भक्तिके साथ व्रजवासकी प्राप्ति हो सकती है या नहीं? इसका समाधान इस तीसरे श्लोकमें किया गया है।

श्रीराधाकृष्णयुगलकी रागात्मिका भक्ति—व्रजप्रेमका दान करनेवाले और उसके नितान्त निगूढ़ रहस्यों एवं उसकी प्राप्तिके साधनोंके प्रकाशक महावदान्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तरङ्ग प्रियजन श्रीस्वरूप, श्रीरूप तथा श्रीसनातन आदि गोस्वामीजन ही महादुर्लभ व्रजप्रेमके मूल भण्डारी एवं संरक्षक हैं। उन्होंने अपनी शिष्य–परम्परा एवं स्वरचित प्रामाणिक ग्रन्थोंके माध्यमसे व्रजरस–रीति, व्रजवासकी पद्धति तथा श्रीयुगलप्रेम–प्राप्तिके निगूढ़ साधनोंका अपूर्व दान

विश्ववासियोंको दिया है। अतः उनके श्रीचरणकमलोंका आश्रय लिये बिना, उनकी शिक्षाओंका अनुसरण किये बिना, उक्त रागात्मिका भक्तिके सहित व्रजवास एवं श्रीयुगलकिशोरकी अनुरागमयी सेवा-परिचर्याकी प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है।

(१) रागात्मिका भक्ति—'सरागं' का तात्पर्य रागात्मिका भक्तिसे है। साधारणतः भक्तिके साधन और सिद्धिकी तीन अवस्थाएँ हैं—**साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति।** साधनभक्तिके परिपाक होनेपर भावभक्ति और भावभक्ति ही परिपक्व अवस्थामें प्रेमभक्ति कहलाती है। फिर भी भक्तितत्त्वके मर्मज्ञ श्रीरूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें बड़े ही सूक्ष्म विवेचनके आधारपर प्रेमोदयके साधारण क्रमका उल्लेख इस प्रकार किया है—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु १/४/१५-१६)

सबसे पहले साधुसङ्गमें शास्त्र-श्रवण द्वारा **श्रद्धा** (श्रीगुरुदेव और शास्त्रके वचनोंमें दृढ़ विश्वास), उसके बाद (भजन-रीति सीखनेके लिए द्वितीय) **साधुसङ्ग,** तत्पश्चात् **भजन-क्रिया,** तदनन्तर **अनर्थ-निवृत्ति** (अप्रारब्ध और प्रारब्ध पापोंका नाश) उसके पश्चात् निष्ठा (भजनमें विक्षेपराहित्य नैरन्तर्य), फिर **रुचि** (भजनमें बुद्धिपूर्वक अभिलाषा), उसके पश्चात् **आसक्ति** (स्वाभाविक आकर्षण—भजन और भजनीय दोनोंके प्रति), तदनन्तर **भाव** और तत्पश्चात् **प्रेम** उदित होता है। साधकोंमें प्रेमाविर्भावका यही प्रायिक क्रम है।

साधकोंके साधनके समय ही वैधी और रागानुगाके भेदसे साधन भक्ति दो प्रकारकी होती है। फलके समय भी अर्थात् वैधी

साधनभक्तिसे उदित प्रेम और रागानुगा साधनभक्तिसे उदित प्रेममें भी एक सूक्ष्म भेद रहता है। वैधीभक्तिके विषयमें श्रीरूप गोस्वामीका सिद्धान्त इस प्रकार है—

यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते।
शास्त्रोक्त्या प्रबलया तत्तन्मर्यादयान्विता।
वैधी भक्तिरियं कैश्चिन्मर्यादामार्ग उच्यते॥
(भ॰ र॰ सि. १/२/६, २६९)

भक्तिके साधनमें दो प्रकारसे प्रवृत्ति होती है, भक्तिके प्रति लोभसे अथवा शास्त्रोंके अनुशासनात्मक वचनोंसे प्रेरित होकर। जिस भक्तिके साधनमें राग (रुचि या लोभ) द्वारा प्रवृत्ति न होकर शास्त्रके अनुशासनात्मक वचनों द्वारा प्रवृत्ति होती है, उसे **वैधीभक्ति** कहते हैं। शास्त्रोक्त प्रबल मर्यादायुक्त इस वैधीभक्तिको कोई-कोई पण्डित (श्रीवल्लभाचार्य सम्प्रदायी) **मर्यादामार्ग** भी कहते हैं।

अब रागानुगाभक्तिके विषयमें श्रीरूपगोस्वामी कहते हैं—

विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥

रागानुगाविवेकार्थमादौ रागात्मिकोच्यते।
इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्॥

तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता।
सा कामरूपा सम्बन्धरूपा चेति भवेद् द्विधा॥
(भ॰ र॰ सि॰ १/२/२७०-२७३)

व्रजवासीजनोंमें (गो, मृग, शुकादि पशु-पक्षियोंमें भी) सुस्पष्ट रूपसे विराजमान भक्तिको **'रागात्मिका'** भक्ति कहते हैं। उस रागात्मिका भक्तिका जो अनुगमन या अनुसरण करती है, उसे

रागानुगाभक्ति कहते हैं। रागानुगाभक्तिको अच्छी तरह समझनेके लिए पहले रागात्मिकाभक्तिका कुछ परिचय दिया जा रहा है। इष्ट वस्तु (श्रीकृष्ण) के प्रति स्वाभाविकी परमावेशमूलक प्रेममयी तृष्णाको **'राग'** कहते हैं। ऐसी रागमयी (प्रबल रागसे युक्त माल्यगुम्फन आदि परिचर्यारूपा) भक्तिको **'रागात्मिकाभक्ति'** कहते हैं। यह रागात्मिकाभक्ति दो प्रकारकी होती है—एक **कामरूपा** और दूसरी **सम्बन्धरूपा**।

रागानुगाभक्तिके अधिकारी कौन हैं? इस विषयमें श्रीरूप गोस्वामीका सिद्धान्त है—

रागात्मिकैकनिष्ठा ये व्रजवासिजनादयः।
तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान्॥

तत्तद्भावादि माधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम्॥

वैधभक्त्यधिकारी तु भावाविर्भावनावधि।
अत्र शास्त्रं तथा तर्कमनुकूलमपेक्षते॥

(भ॰ र॰ सि॰ १/२/२९१-२९३)

केवल रागात्मिकाभक्तिमें ही निष्ठा रखनेवाले व्रजवासियोंके भावोंके अनुरूप (तज्जातीय) भावकी प्राप्तिके लिए लालायित व्यक्ति ही रागानुगाभक्ति-मार्गके अधिकारी हैं। श्रीमद्भागवत और रसिक भक्तों द्वारा रचित तदर्थ प्रतिपादक लीला-ग्रन्थोंमें वर्णित श्रीनन्द-यशोदा आदि व्रजवासियोंके भाव तथा रूप-गुण आदि, जो श्रीकृष्णके लिए सर्वेन्द्रिय-प्रीतिकर एवं परमार्षक हैं, उनसे सम्बन्धित मधुर लीलाकथाओंको सुनकर बुद्धिका उस विषयमें शास्त्रयुक्तिकी तनिक भी अपेक्षा न रखकर उन भावोंको प्राप्त करनेके लिए भक्तिमें स्वतः प्रवृत्त होना ही लोभ-उत्पत्तिका लक्षण है। वैधीभक्तिके अधिकारीमें, साधन करते-करते जब तक भगवत्-रति आविर्भूत नहीं होती, तब तक वह शास्त्र तथा

अनुकूल तर्ककी अपेक्षा करता है, परन्तु रति उदित हो जानेके बाद वह उनकी अपेक्षा नहीं रखता। किन्तु रागानुगाभक्तिका अधिकारी व्रजभावके प्रति लोभ उत्पन्न होते ही भक्तिमें प्रवृत्त होनेके प्रारम्भसे कभी भी शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा नहीं रखता—यही रागानुगाभक्तिका महान उत्कर्ष है। किन्तु जिस विषयमें लोभ होता है, उसकी प्राप्तिके लिए शास्त्रादिका अनुसन्धान तथा शास्त्रोक्त साधनका अनुसन्धान करना अवश्य कर्त्तव्य है।

अब रागानुगा-भजनकी परिपाटीके विषयमें श्रीरूप गोस्वामीका सिद्धान्त यह है—

> कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
> तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥
>
> सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
> तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥
>
> श्रवणोत्कीर्त्तनादीनि वैधभक्त्युदितानि तु।
> यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः॥
>
> (भ॰ र॰ सि॰ १/२/२९४-२९६)

अपने प्रियतम नवकिशोर श्रीनन्दनन्दनका और उसी प्रकार श्रीकृष्णके प्रिय भक्तजन अथच अपने सजातीय भाववाले व्यक्तिका स्मरण करते हुए सामर्थ्य रहनेपर शरीर द्वारा श्रीव्रजधाममें नित्य वास करना चाहिये, अन्यथा असमर्थ होनेपर मन-ही-मन सदा व्रजमें वास करना चाहिये। यही रागानुगाभक्ति साधनकी परिपाटी है। रागानुगाभक्तिके लोभी व्यक्तिको साधक रूपमें यथावस्थित देहसे अपने सजातीय भाववाले व्रजपरिकरोंके भावके अनुसार अर्थात् कृष्णप्रिया श्रीराधिका, श्रीचन्द्रावली, ललिता, विशाखा और रूपमञ्जरी आदिके अनुगत होकर एवं श्रीरूप, सनातन, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीका अनुसरण करते हुए (अनुकरण नहीं) श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये। दास्यभावके साधकको दास्यभावके परिकर

रक्तक–पत्रकादिके, सख्यभावके साधकको श्रीदाम–सुबल आदिके और वात्सल्यभावके साधकको श्रीनन्द–यशोदा आदिके भावानुसार सेवा करनी चाहिये। सिद्धदेहसे श्रीराधा, ललिता, विशाखा, रूप–रति मञ्जरीके आनुगत्यमें मानसीसेवा तथा साधक रूपमें श्रीरूप–सनातनादिके आनुगत्यमें ही दैहिकादि सेवा करनी चाहिये।

वैधीभक्तिमें श्रवण–कीर्त्तन आदि (श्रीगुरुपदाश्रयादि भी) जिन भक्त्यङ्गोंका पहले वर्णन किया जा चुका है, इस रागानुगाभक्तिमें भी उन–उन अङ्गोंकी उपयोगिता और अपेक्षा है। किन्तु बुद्धिमान साधकको अपने भावके अनुकूल अङ्गोंका ही आचरण करना चाहिये, सभी अङ्गोंका अथवा विरुद्ध अङ्गोंका नहीं। अहंग्रह–उपासना, मुद्रा–न्यास, द्वारका ध्यान, श्रीरुक्मिणी पूजनादि विरुद्ध अङ्गोंका आचरण व्रजभावानुरागी साधकके लिए विधेय नहीं है।

साधनदशाको पार करनेपर भावदशा होती है। भावका ही दूसरा नाम **'रति'** है। रतिके सम्बन्धमें श्रीरूप गोस्वामी श्रीउज्ज्वल–नीलमणि ग्रन्थमें कहते हैं—

इयमेव रतिः प्रौढा महाभावदशां व्रजेत्।
या मृग्या स्याद्विमुक्तानां भक्तानां च वरीयसाम्॥

स्याद्दृढेयं रतिः प्रेमा प्रोद्यन्स्नेहः क्रमादयम्।
स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि॥

बीजमिक्षुः स च रसः स गुडः खण्ड एव सः।
स शर्करा सिता सा च सा यथा स्यात्सितोपला॥

अतः प्रेमविलासाः स्युर्भावाः स्नेहादयस्तु षट्।
प्रायो व्यवह्रियन्तेऽमी प्रेमशब्देन सूरिभिः॥

यस्या यादृशजातीयः कृष्णे प्रेमाभ्युदञ्चति।
तस्यां तादृशजातीयः स कृष्णस्याप्युदीयते॥

(उ॰ नी॰ १४/५७, ५९–६२)

यही (समर्था) रति क्रमशः बढ़ते-बढ़ते महाभाव दशाके रूपमें परिणत हो जाती है। इसीलिए विमुक्त एवं प्रधान-प्रधान भक्तजन भी इसी रतिका अन्वेषण करते हैं। यही रति वृद्धिप्राप्त होकर उत्तरोत्तर वैशिष्ट्यवशतः अवस्थाके भेदसे क्रमशः प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव नाम धारण करती है; ठीक वैसे ही जैसे गन्नेके बीजसे गन्ना और उससे रस, गुड़, खाँड़, शर्करा, सिता और सितोपला होते हैं। जिस प्रकार रससे लेकर सितोपला तक छः वस्तुएँ गन्नेकी ही परिणति हैं, उसी प्रकार स्नेहसे लेकर भाव तक सभी प्रेमके ही विलास हैं। इसीलिए शास्त्रविद्गण इन छहके लिए 'प्रेम' शब्दका प्रयोग करते हैं। यहाँ यह बात भी उल्लेख योग्य है कि जिस साधकभक्तमें जिस प्रकारका प्रेम उदित होता है, उसके प्रति श्रीकृष्णकी भी वैसी ही प्रीति होती है।

निष्पक्ष और गूढ़ रूपसे विचार करनेपर यह कहना होगा कि व्रजका शृङ्गाररस-सम्बन्धीय प्रेम अन्यान्य सम्प्रदायोंमें नहीं है—यदि है भी, तो स्वल्प मात्रामें ही है। इसलिए श्रीदास गोस्वामीने व्रजभावको प्राप्त करनेके इच्छुक साधकोंको श्रीचैतन्य महाप्रभुके कृपापात्र श्रीस्वरूप, श्रीरूप, श्रीसनातनादि गोस्वामियोंको शिक्षागुरुके रूपमें वरण करनेका उपदेश दिया है।

(२) **जन्म-जन्ममें—**प्रेम-लक्षणा रागात्मिकाभक्ति अनेक जन्मोंमें सिद्ध होती है, भगवान् या भगवद्भक्तोंकी कृपा होनेपर शीघ्र ही सिद्ध होती है॥३॥

चतुर्थ श्लोक

असद्वार्त्तावेश्या विसृज मतिसर्वस्वहरणीः
कथामुक्तिव्याघ्र्या न शृणु किल सर्वात्मगिलनीः।
अपि त्यक्त्वा लक्ष्मीपतिरतिमितो व्योमनयनीं
व्रजे राधाकृष्णौ स्वरतिमणिदौ त्वं भज मनः॥४॥

हे प्यारे भैया मन! विशुद्ध मतिरूप सर्वस्व धनका हरण करनेवाली असद्वार्त्तारूपी वेश्याका और सम्पूर्ण रूपसे आत्मसत्ता तक को निगलनेवाली मुक्ति-कथारूपी बाघिनीका सर्व प्रकारसे निश्चित रूपमें त्याग करो; अपितु वैकुण्ठगतिदायिनी लक्ष्मीपति श्रीनारायण-विषयिनी रतिका भी परित्यागकर स्वरतिद अर्थात् निजस्व रतिरूपी मणिको प्रदान करनेवाले श्रीश्रीराधाकृष्णका ही व्रजवासपूर्वक भजन करो।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

इस चौथे श्लोकमें प्रेम-प्राप्तिके बाधक तत्त्वोंका निर्देश किया गया है।

(१) मतिसर्वस्वहरणी असद्वार्त्तारूपी वेश्या—जिस प्रकार वेश्या लम्पट व्यक्तिका यथासर्वस्व अपहरण कर लेती है, असत्-वार्त्ता भी उसी प्रकार जीवकी सत्-बुद्धिरूपी सर्वस्वका अपहरण कर लेती है। पारमार्थिक-मति ही भजनशील जीवका एकमात्र सर्वस्व धन है। असत्-वार्त्ता द्वारा वैसी सन्मति भ्रष्ट होकर भोग और मोक्षमें लग जाती है। नश्वर विषय-भोगकी आलोचना और उनसे जितने प्रकारके भी सम्बन्ध हैं—वे सभी असत् हैं। क्षुद्र-क्षुद्र अर्थोंको प्रदान करनेवाले शास्त्रोंकी आलोचना, अर्थ-पिपासा,

स्त्रीसंग, स्त्रीसङ्गियोंका सङ्ग (गृहस्थवैष्णवोंका विवाहित पत्नीमें स्वार्थपर आसक्ति तथा गृही या गृहत्यागी व्यक्तियोंका कामिनी बुद्धिसे आसक्त होकर हरिकथा आदिके बहाने उनसे सम्भाषण या सङ्ग भी)—ये सब असत् हैं। इन असत्-विषयोंका आसक्तिपूर्वक अनुशीलनका नाम ही असत्-वार्त्ता है। सुमतिके विषयमें श्रीमन् महाप्रभुके पार्षदप्रवर श्रीरायरामानन्दजी कहते हैं—

कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते॥
(पद्यावली १५वाँ श्लोक)

सज्जनो! श्रीकृष्ण-भक्तिरस द्वारा भावित, सुवासित या सिक्तमति, यदि कहीं भी मिल जाये, तो उसे तुरन्त खरीद लो। उसका मूल्य तो केवल व्रजरसकी प्राप्तिकी लालसामात्र है। उसके बिना तो श्रीकृष्ण-भक्तिरस विभावित मति करोड़ों जन्मोंकी पुंजीभूत सुकृतिसे भी नहीं मिल सकती।

(२) सर्वात्मगिलनी मुक्ति-व्याघ्रीकी कथा—यहाँ 'मुक्ति' शब्दसे ब्रह्म-निर्वाण या सायुज्यमुक्तिका अभिप्राय है। सायुज्यमुक्ति आत्मसत्ताको सहज ही सम्पूर्ण रूपसे निगल जाती है—नष्ट कर देती है। मुक्तिमें ब्रह्मसत्ता मानी जाती है, वह भी आकाश-कुसुमकी भाँति सम्पूर्ण झूठी एवं वागाडम्बरमात्र है। वास्तवमें सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् ही एकमात्र परमतत्त्व हैं। उनकी एक नित्य-पराशक्ति है। वही पराशक्ति चित् रूपमें भगवल्लीला, अचित् या महामाया रूपमें अनन्त ब्रह्माण्ड तथा बद्धजीवोंके स्थूल-लिङ्ग शरीर और तटस्था जीवशक्तिके रूपमें अनन्त अणुचित् जीवोंको प्रकटित करके अपने प्रभु भगवान्‌की विविध प्रकारसे सेवा करती है। जो लोग भगवान्‌के नित्यरूप, नित्यनाम, नित्यगुण और उनकी नित्यलीलाके विरोधी होते हैं, वे अपने कर्मफलसे अपनी आत्माका विनाश करनेवाली 'ब्रह्मलय' नामक एक अवस्थाकी

कल्पना एवं उसकी आलोचनामें ही सुख मानते हैं। उनका यह मुक्तिसुख वैसे ही है, जैसे कोई कैदी दुःखोंसे सदाके लिए छुटकारा पानेके लिए स्वयं आत्महत्या कर ले। ऐसी मुक्तिकी कथा अर्थात् मुक्तिकी प्राप्तिके लिए जो प्रक्रिया और उपासनाकी पद्धति बतलायी गयी है, उसमें तथा उसमें आग्रह रखनेवाले पुरुषोंका सङ्ग यत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये। नर-खादक बाघिनी जिस प्रकार मनुष्यके शरीरको खा जाती है, मुक्तिरूपी बाघिनी भी उसी प्रकार आत्मसत्ताको निगल जाती है। अतएव भगवद्भक्तोंने मुक्तिको आत्मविनाश तुल्य माना है। इस विषयमें श्रीरूप गोस्वामीका सिद्धान्त है—

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावद् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

श्रीकृष्णचरणाम्भोजसेवानिर्वृतचेतसाम् ।
एषां मोक्षाय भक्तानां न कदाचिद् स्पृहा भवेत्॥
(भ० र० सि० १/२/२२, २५)

भोग और मोक्षकी कामनारूपी पिशाची जब तक साधकके हृदयमें विद्यमान रहती है, तब तक उसमें विशुद्धाभक्तिका सुख भला कैसे उदित हो सकता है? अर्थात् उस मलिन और अपवित्र हृदयमें शुद्धाभक्ति कभी भी उदित नहीं हो सकती। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलोंके सेवासुखमें निमग्न-चित्त भक्तोंमें मोक्ष-प्राप्तिकी अभिलाषाकी गन्ध भी नहीं होती।

(३) व्योमनयनी लक्ष्मीपति-रति—परव्योम वैकुण्ठधामको कहते हैं। यहाँ परम ऐश्वर्य-प्रधान लक्ष्मीपति श्रीमन्नारायण विराजमान रहते हैं। श्रीमन्नारायणकी भक्तिसाधनाकी सिद्धि होनेपर उक्त धाममें सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सार्ष्टि (भगवान्के समान ऐश्वर्यकी प्राप्ति)—ये चार प्रकारकी मुक्तियाँ होती हैं। इस विषयमें श्रीरूप गोस्वामीका सिद्धान्त यह है—

अत्र त्याज्यतयैवोक्ता मुक्तिः पञ्चविधापि चेत्।
सालोक्यादिस्तथाप्यत्र भक्त्या नातिविरुध्यते॥

सुखैश्वर्योत्तरा सेयं प्रेमसेवोत्तरेत्यपि।
सालोक्यादिर्द्विधा तत्र नाद्या सेवाजुषां मता॥

किन्तु प्रेमैकमाधुर्यजुष एकान्तिनो हरौ।
नैवाङ्गीकुर्वते जातु मुक्तिं पञ्चविधामपि॥

तत्राप्येकान्तिनां श्रेष्ठा गोविन्दहृतमानसाः।
येषां श्रीशप्रसादोऽपि मनो हर्तुं न शक्नुयात्॥

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीशकृष्णस्वरूपयोः।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः॥
(भ० र० सि० १/२/५५-५९)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यद्यपि पाँचों प्रकारकी मुक्तियाँ ही त्याज्य हैं, फिर भी सायुज्यको छोड़कर बाकी सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सार्ष्टि—ये चार प्रकारकी मुक्तियाँ भक्तिकी अत्यन्त विरोधी नहीं हैं। ये सारूप्य आदि चारों मुक्तियाँ भी सुखैश्वर्योत्तरा और प्रेमसेवोत्तरा भेदसे दो प्रकारकी होती हैं। इनमें पहली सुखैश्वर्योत्तरा मुक्तियाँ प्रेम-सेवापरायण भक्तोंके लिए ग्रहणीय नहीं हैं, क्योंकि इनमें स्वसुख और ऐश्वर्य भोगकी कामना होती है। दूसरी प्रकारकी प्रेमसेवोत्तरा मुक्तियोंको कोई-कोई भक्त ग्रहण करते हैं—ऐसा सुना जाता है। परन्तु इनमें भी गौण रूपमें स्वसुखभोगकी कामनाकी गन्ध रहनेसे ऐकान्तिक भगवत्सेवानुरागी भक्तजन इन्हें भक्ति (प्रेममयी सेवा-परिचर्या) का विरोधी मानते हैं। इसीलिए केवल भगवत्प्रीतिका विधान करनेवाले—सेवा-सुख-माधुर्यका रसास्वादन करनेवाले परम ऐकान्तिक भक्तगण भगवान् द्वारा दिये जानेपर भी इन पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंको किसी भी तरहसे ग्रहण नहीं करते।

श्रीभगवान्के नाना अवतारोंके ऐसे-ऐसे अनन्य भक्तोंमें भी, श्रीनन्दनन्दनने जिनका मन हरण कर लिया है, वे सेवानुरक्त

परमप्रेमातुर भक्तजन ही सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि परव्योमाधिपति श्रीमन्नारायणका कृपा-प्रसाद भी उनके मनका हरण नहीं कर सकता। यद्यपि श्रीकृष्ण और परव्योमपति श्रीनारायणमें तत्त्वसिद्धान्तके विचारसे कोई भेद नहीं है, तथापि सर्वोत्कृष्ट प्रेमरसकी दृष्टिसे श्रीकृष्णस्वरूपका उत्कर्ष लक्षित होता है। रसका स्वभाव ही श्रीकृष्णको उत्कृष्ट बना देता है। इस विषयमें श्रीहरिदासजीकी भावना देखिये—

अलं त्रिदिववार्त्तया किमिति सार्वभौमश्रिया
विदूरतरवर्तिनी भवतु मोक्षलक्ष्मीरपि।
कलिन्दगिरिनन्दिनीतटनिकुञ्जपुञ्जोदरे
मनो हरति केवलं नवतमालनीलं महः॥

(पद्यावली १०२वाँ श्लोक)

स्वर्गसम्बन्धी वार्त्तालापसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, सम्पूर्ण पृथ्वीके आधिपत्यकी तो बात ही क्या, मोक्ष ओर लक्ष्मी (ऐश्वर्यपूर्ण वैकुण्ठ पद) का नाम भी मुझे नहीं सुहाता। मेरे मनको तो केवल यमुना तटवर्ती निकुञ्ज कुञ्जके भीतर विराजमान नवतमाल सदृश कोई नील तेजःपुञ्ज अपनी ओर हरण कर रही है।

(४) स्व-रतिमणिद—आत्मरतिरूपी मणिको देनेवाले। निखिल आत्माओंके भी आत्मा श्रीराधाकृष्ण हैं। उनमें अणुचैतन्यरूप नित्य कृष्णदास जीवोंकी जो स्वरूपानुबन्धी स्वाभाविकी रति है, वही आत्मरति है। वह आत्मरति जीवस्वरूपमें नित्यसिद्ध रहनेपर भी मायाबद्ध दशामें अविद्याजनित विविध वासनाओंसे आच्छादित रहती है। इस विषयमें श्रीमद् ईश्वरपुरीजीकी लोकोत्तर निष्ठा आदर्श स्थानीय है—

धन्यानां हृदि भासतां गिरिवरप्रत्यग्रकुंजौकसां
सत्यानन्दरसं विकारविभवव्यावृत्तमन्तर्महः।

अस्माकं किल वल्लवीरतिरसो वृन्दाटवीलालसो
गोपः कोऽपि महेन्द्रनीलरुचिरश्चित्ते मुहुः क्रीडतु॥
(पद्यावली ७५वाँ श्लोक)

पर्वतराजके विशुद्ध कुञ्जमें निवास करनेवाले निर्वेद ब्रह्मज्ञानी धन्यमान्य महापुरुषोंके हृदयमें विकार-वैभवरहित अन्तःकरणका उत्सवरूप यदि कोई अनिर्वचनीय सत्यानन्द रस प्रकाशित होता है, तो होने दो, हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं, किन्तु हमारे हृदयमें तो निश्चय ही गोपीरतिरसस्वरूप वृन्दावन विलासी इन्द्रनीलमणिकान्ति-मनोहर कोई गोपकिशोर निरन्तर क्रीड़ा करता रहे।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी निष्ठा भी अद्भुत सुन्दर है—

रसं प्रशंसन्तु कवित्वनिष्ठाः ब्रह्मामृतं वेदशिरोनिविष्टाः।
वयं तु गुंजाकलितावतंसं गृहीतवशं कमपि श्रयामः॥
(पद्यावली ७६वाँ श्लोक)

कविजन काव्यरसकी और वैदान्तिकजन ब्रह्मामृतकी यदि भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं तो करते रहें, किन्तु हम तो गुञ्जा-माला आदि आभूषणोंसे विभूषित, अधरपल्लवोंपर वंशीको धारण करनेवाले किसी गोपकुमारका आश्रय ग्रहण करते हैं।

श्रीकविरत्नजी भी कहते हैं—

जातु प्रार्थयते न पार्थिवपदं नैन्द्रे पदे मोदते
सन्धत्ते न च योगसिद्धिषु धियं मोक्षं न चाकांक्षति।
कालिन्दीवनसीमनि स्थिरतडिन्मेघद्युतौ केवलं
शुद्धे ब्रह्मणि वल्लवीभुजलताबद्धे मनो धावति॥
(पद्यावली ७८वाँ श्लोक)

हमारा मन कभी भी चक्रवर्ती-पदको नहीं चाहता, इन्द्र-पदवीसे भी प्रसन्न नहीं होता, योग-सिद्धिमें भी बुद्धिको नहीं लगाता तथा मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं करता, वह तो केवल श्रीयमुनाके

तटवर्ती श्रीवृन्दावनके अन्तर्गत (कुञ्जोंमें) स्थिर-विद्युतसे युक्त मेघकी कान्तिवाले, गोपरमणियोंकी भुजलतामें बँधे हुए अर्थात् गोपीगणालिङ्गित किसी अनिर्वचनीय शुद्ध-ब्रह्मकी ओर ही भागता रहता है।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीने भी ऐसी ही भव्य भावना प्रकट की है—

अनङ्गरसचातुरीचपलचारुनेत्राञ्चल-
श्चलन्मकरकुण्डल स्फुरितकान्तिगण्डस्थलः।
व्रजोल्लसितनागरीनिकररासलास्योत्सुकः
स मे सपदि मानसे स्फुरतु कोऽपि गोपालकः॥
(पद्यावली ९६वाँ श्लोक)

अहो! अनङ्गरस चातुरीसे जिसके चारु नेत्राञ्चल अतिशय चञ्चल हो रहे हैं, हिलते हुए मकराकृत कुण्डलोंकी परछाई जिसके दोनों कपोलोंमें प्रतिविम्बित हो रही है और जो व्रजकी आनन्दमयी गोपियोंके साथ रास-विलास करनेमें समुत्सुक हैं, ऐसा कोई अनिर्वचनीय गोपाल शीघ्र ही हमारे मन-मन्दिरमें आ विराजे।

व्रजमें श्रीराधाकृष्ण-युगलके भजन द्वारा ही वह सिद्धरतिरूपी मणि पुनः उदित होकर महाभाव तक पुष्ट होती है॥४॥

पञ्चम श्लोक

असच्चेष्टाकष्टप्रदविकटपाशलिभिरिह
प्रकामं कामादिप्रकटपथपातिव्यतिकरैः।
गले बद्ध्वा हन्येऽहमिति बकभिद्वर्त्मपगणे
कुरु त्वं फुत्कारानवति स यथा त्वां मन इतः॥५॥

हे मन! "जीवन-पथमें सहसा आक्रमण करनेवाले काम-क्रोधादि दस्युगण अपनी कुचेष्टारूपी कष्टप्रद भयङ्कर रस्सियों द्वारा मनमाने ढङ्गसे गलेको बाँधकर मुझे जानसे मार रहे हैं।"—ऐसा कहकर रोते-रोते बड़े कातर-स्वरसे बकासुरको मारनेवाले श्रीकृष्णके भक्तिमार्गके रक्षक (महाबलशाली एवं दयालु) भक्तोंको पुकारो। वे तुम्हारी करुण पुकार सुनकर (अवश्य ही) रक्षा करेंगे।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) कामादिप्रकटपथपातिव्यतिकर—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये छः जीवन-पथके लुटेरे हैं। परस्पर मिलित होकर दस्युवृत्ति करनेवालोंको 'व्यतिकर' कहते हैं। श्रीभगवद्गीतामें काम-क्रोध आदिके विषयमें कहा गया है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥
(गीता २/६२-६३)

अर्थात् विषयोंका चिन्तन करनेसे उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे मूढ़भाव उत्पन्न होता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश होनेपर पुनः विषय भोगोंमें निमग्न हो जाता है। इस प्रकार संसार-चक्रमें फँसकर दुःख भोगने लग जाता है।

श्रीबलदेव विद्याभूषणजी उक्त श्लोकोंके 'गीताभूषण' भाष्यमें कहते हैं—

भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंमें चित्तको लगाये बिना केवल ज्ञान, योग और तपस्या आदिके द्वारा मनको निगृहीत करना, काम क्रोधादि अनर्थोंसे छुटकारा पाना सर्वथा असम्भव है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि विषयोंको सुखका कारण मानकर उनका मन-ही-मन चिन्तन करनेसे योगी पुरुषकी भी विषयोंमें आसक्ति हो जाती है। आसक्तिसे भोगकी कामना उत्पन्न होती है। भोग-कामनामें बाधा उपस्थित होनेपर क्रोध और उससे कार्य-अकार्य विचार करनेकी बुद्धि अर्थात् ज्ञानका लोप हो जाता है। ऐसे सम्मोहसे स्मृतिका भ्रम हो जाता है, अर्थात् इन्द्रियोंको जय करनेके प्रयत्नोंके अनुसन्धानसे च्युत हो जाता है। स्मृतिका भ्रम होनेपर बुद्धिका नाश अर्थात् आत्मज्ञानमूलक अनुशीलनका विनाश हो जाता है। अन्तमें बुद्धिका नाश होनेपर सर्वनाश हो जाता है। यहाँ सर्वनाशका अभिप्राय विषय-भोगोंमें निमग्न हो जाना है। तात्पर्य यह कि श्रीभगवान्‌का आश्रय ग्रहण नहीं करनेसे दुर्निवार मनको जीतना असम्भव है। अवशीभूत मन ही घोर अनर्थोंकी जड़ है। अतः मनको वशीभूत करनेके इच्छुक पुरुषोंको अवश्य ही भगवान्‌की आराधना करनी चाहिये। जीवमात्रका यही प्रधान और एकमात्र कर्त्तव्य है।

(२) असच्चेष्टारूप कष्टप्रद भयङ्कर पाश—पूर्व कथित षड्‌रिपुओंकी कुचेष्टारूपी कष्टप्रद भयङ्कर रस्सियों द्वारा गलेका बाँधा जाना।

(३) बकभिद्वर्त्मपगणे—बकभिद् = मूर्त्तिमान कपटतारूप बकासुरका विनाश करनेवाले श्रीकृष्ण। वर्त्म = पथ अर्थात् कृष्णका प्रेमानुशीलन रूप पथ, प = पालक अथवा रक्षक वैष्णवजन। तात्पर्य यह कि अनर्थोंसे रक्षाके लिए कपट बकासुरका विनाश करनेवाले श्रीकृष्णके प्रेमानुशीलनरूप पथके रक्षक एवं पालक वैष्णवजनोंको रो-रोकर कातर स्वरसे पुकारो। वे महाबलवान एवं परम करुणामय वैष्णवजन तुम्हारी करुण पुकार सुनकर अवश्य ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।

श्रीरामानुजाचार्य प्रार्थना करते हैं—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान् ।
रुक्माङ्गदोद्धवविभीषणफाल्गुनादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् नमामि॥
(पद्यावली ५२वाँ श्लोक)

मैं प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्माङ्गद, उद्धव, विभीषण और अर्जुन प्रभृति पुण्यात्मा परम महाभागवतोंको नमस्कार करता हूँ।

भक्तनिष्ठ श्रीसर्वज्ञ नामक भक्तकवि भक्तोंकी स्थितिका वर्णन करते हुए कहते हैं—

त्वद्भक्तः सरितां पतिं चुलुकवत् खद्योतवद्भास्करं
मेरुं पश्यति लोष्ट्रवत् किमपरं भूमेः पतिं भृत्यवत्।
चिन्तारत्नचयं शिलाशकलवत् कल्पद्रुमं काष्ठवत्
संसारं तृणराशिवत् किमपरं देहं निजं भारवत्॥
(पद्यावली ५६वाँ श्लोक)

हे भगवन्! तुम्हारे भक्त समुद्रको चुल्लूके समान, सूर्यको खद्योतके समान, सुमेरु पर्वतको मिट्टीके ढेलेके समान, सम्राट

चक्रवर्तीको तुच्छ सेवकके समान, चिन्तामणिके ढेरको पत्थरके टुकड़ोंके समान, कल्पवृक्षको साधारण लकड़ीके समान और संसारको तृणराशिके समान देखते हैं। और अधिक क्या कहें? आपके वियोगमें उन्हें अपना शरीर भी भार-सा प्रतीत होता है।

श्रीमाधवसरस्वतीजी और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

मीमांसारजसा मलीमसदृशां तावन्न धीरीश्वरे
गर्वोदर्ककुतर्ककर्कशधियां दूरेऽपि वार्त्ता हरेः।
जानन्तोऽपि न जानते श्रुतिसुखं श्रीरङ्गिसङ्गादृते
सुस्वादुं परिवेषयत्यपि रसं गुर्वी न दर्वी स्पृशेत्॥
(पद्यावली ५७वाँ श्लोक)

केवले कर्मकाण्ड प्रतिपादक मीमांसा दर्शनरूप धूलिसे जिनका ज्ञान-चक्षु अत्यन्त मलिन हो गया है, उनकी बुद्धि भगवान्‌में नहीं लग सकती। गर्व ही अन्तिम फल है जिनका, ऐसे कुतर्कोंसे जिनकी बुद्धि कर्कश हो गयी है, श्रीहरिकी कथा तो उनसे बहुत ही दूर है, अर्थात् उन्हें हरिचर्चा सुहाती ही नहीं। वेदज्ञ पण्डितजन भी श्रीकृष्णमें आसक्ति न होनेसे जानते हुए भी वेदोंके वास्तविक तत्त्वको इस प्रकार नहीं जान पाते, जैसे बड़ी भारी दर्वी (कलछी) सुस्वादु रसको परोसती हुई भी उस मधुर रसके स्वादसे वञ्चित रहती है।

श्रीहरिभक्तिसुधोदय ग्रन्थमें सत्सङ्गकी ऐसी ही महिमाका वर्णन किया गया है—

यस्य यत्सङ्गतिः पुंसो मणिवत् स्यात् स तद्गुणः।
स्वकुलर्द्ध्यै ततो श्रीमान् स्वयूथ्यानेव संश्रयेत्॥
(भ॰ र॰ सि॰ १/२/२२९ उद्धृत)

दृष्टान्तके द्वारा सजातीय सङ्गका प्रभाव दिखला रहे हैं—जैसे समीपवर्ती वस्तुका गुण (रङ्ग) स्फटिकमणिमें प्रतिविम्बित होता

है, उसी प्रकार जिसके सहित जिस व्यक्तिका सङ्ग होता है, उस व्यक्तिमें सङ्गी व्यक्तिके सभी गुण आ जाते हैं। इसलिए अपने कुलकी समृद्धिके लिए बुद्धिमान व्यक्तिको सजातीय सत्पुरुषोंका ही सङ्ग करना चाहिये। सारांश यह है कि ज्ञान, वैराग्य, योग और तपस्या आदिसे हृदयकी मलिनता दूर नहीं होती, परन्तु दम्भहीन वैष्णवोंके सङ्गके प्रभावसे उनकी कृपा होनेपर हृदय सहज ही सम्पूर्ण रूपसे निर्मल हो जाता है॥५॥

षष्ठ श्लोक

अरे चेतः प्रोद्यत्कपटकुटिनाटीभरखर–
क्षरन्मूत्रे स्नात्वा दहसि कथमात्मानमपि माम्।
सदा त्वं गान्धर्वागिरिधरपदप्रेमविलसत्–
सुधाम्भोधौ स्नात्वा स्वमपि नितरां मां च सुखय॥६॥

काम–क्रोधादि रिपुओंका दमन होनेपर भी कपटतारूप महाशत्रुका जय करनेके लिए उपदेश दे रहे हैं—अरे दुष्ट मन! तुम साधनपथका अवलम्बन करके भी स्पष्ट रूपसे प्रतीत होनेवाली प्रचुर कपटता एवं कुटिलतारूप गधेके बहते हुए मूत्रमें स्नानकर अपनेको पवित्र मान रहे हो? किन्तु उसके द्वारा स्वयं तो जल ही रहे हो, साथ ही मुझ क्षुद्र जीवको भी जला रहे हो। देख, ऐसा न कर; अब तो केवल श्रीराधाकृष्ण–युगलके श्रीचरणकमल विषयक प्रेमरूप सुधा–समुद्रमें अवगाहन (स्नान) कर अपनेको और साथ ही मुझे भी निरन्तर सुखी करो।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) स्पष्ट कपट कुटिनाटीभर खर क्षरन्मूत्रमें स्नान करना—साधन–पथका अवलम्बन करके भी साधक पुरुषोंमें स्पष्टतः प्रतीत होनेवाली जो प्रचुर कपटता और कुटिलता है, वह गधेके मूत्रके तुल्य है तथा कपटी–कुटिल होते हुए भी अपनेको भजनशील समझना गधेके अपवित्र एवं दाहक मूत्रसे स्नानकर अपनेको पवित्र समझनेके तुल्य है। साधकको सावधानीपूर्वक इनका परित्याग करना कर्त्तव्य है।

भक्तिसाधक तीन प्रकारके होते हैं—स्वनिष्ठ, परिनिष्ठित और निरपेक्ष। स्वनिष्ठ साधक वर्णाश्रमविहित विधि-विधानका पालन और निषेधोंका सम्पूर्ण रूपसे त्याग करके भगवान् श्रीहरिके प्रीतिविधानके लिए सततः प्रयत्नशील होते हैं। परिनिष्ठतजन भगवान्‌की सेवा-परिचर्या आदि क्रियाओंके अनुगत विधि-निषेधोंके अनुसार सारे कार्य करते हैं। ये दोनों प्रकारके साधक गृहस्थ होते हैं। निरपेक्ष साधक गृहत्यागी होते हैं। निष्कपट होनेपर ही तीनों प्रकारके साधकोंका कल्याण होता है। अन्यथा कपटताका आश्रय करनेसे ये तीनों ही भ्रष्ट हो जाते हैं। इनकी कपटताका परिचय नीचे दिया जा रहा है—

स्वनिष्ठ साधकोंकी कपटता—

(क) भक्तिसाधनका बहाना बनाकर इन्द्रिय-सुख साधनमें ही तत्पर रहना, (ख) निष्कपट भक्तोंकी सेवा करनेके बदले धनवान और प्रभावशाली विषयी लोगोंकी सेवा करना, (ग) आवश्यकतासे अधिक अर्थादिके संग्रहमें व्यस्त रहना, (घ) निरर्थक और अनित्य धन्धोंमें आग्रह रखना, (ङ) विद्या अनुशीलनके बहाने कुतर्क करना और (च) निरपेक्ष विरक्त साधकोंका वेश धारणकर जड़-प्रतिष्ठा-संग्रहके लिए प्रयत्नशील होना।

परिनिष्ठित साधकोंकी कपटता—

(क) बाहरसे परिनिष्ठित होनेका ढोंग करना, किन्तु अन्दर-ही-अन्दर कृष्णेतर विषयोंमें आसक्त रहना, (ख) अनन्य प्रेमीभक्तोंके सङ्गकी अपेक्षा सत्कर्मी, ज्ञानी, योगी, विषयी आदिके सङ्गमें अधिक आग्रह रखना आदि।

निरपेक्ष साधकोंकी कपटता—

(क) अपनेको श्रेष्ठ वैष्णव समझनेका दम्भ रखना, (ख) वैराग्य-वेश धारणकर अहङ्कारवश दूसरे साधकोंको तुच्छ समझना,

(ग) जीवन-निर्वाहोपयोगी भोजन और वस्त्रके अतिरिक्त अर्थादि संग्रहमें प्रयत्नशील रहना, (घ) साधनके बहाने योषित् (स्त्री) सङ्ग करना, (ङ) हरि मन्दिरको छोड़कर धन आदिकी लालसासे विषयी लोगोंके समीप उठना-बैठना, (च) भजनके बहाने अर्थ-संग्रहमें उद्विग्न रहना, (छ) वैराग्य वेशके प्रति सम्मान देने तथा विधि-पालनके प्रति अधिक आग्रह द्वारा कृष्ण-रतिको क्षीण करना—आदि निरपेक्ष साधकोंकी कपटताएँ हैं।

अतः भजनराज्यमें कपटतासे उत्पन्न कुतर्क, कुसिद्धान्त और अनर्थ आदिकी तुलना गधेके मूत्रसे की गयी है। बहुत-से साधक इस कपटतारूपी गधेके अपवित्र मूत्रमें स्नान करके भी अपनेको पवित्र मानते हैं। वस्तुतः यह मूत्र आत्माका दहन करनेवाला है।

(२) केवल गान्धर्वागिरिधरपद प्रेमविलासरूप सुधा-समुद्रमें स्नान—गान्धर्वा—भगवत्-स्वरूप शक्ति श्रीमती राधिका। गिरिधर—सर्वशक्तिमान परम-पुरुष व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण। इन युगलकिशोरके श्रीचरणकमलविषयक प्रेमजनित विशुद्ध चिद्विलासरूप सुधा-समुद्रमें अवगाहन (स्नान) करो। श्रीरूप गोस्वामी इस विषयमें स्वयं प्रार्थना करते हैं—

शुद्धगाङ्गेयगौराङ्गीं कुरङ्गीलङ्गिमेक्षणाम्।
जितकोटीन्दुबिम्बास्यमम्बुदाम्बरसंवृताम् ॥१॥

नवीनवल्लवीवृन्दधम्मिल्लोत्फुल्लमल्लिकाम्।
दिव्यरत्नाद्यलङ्कार सेव्यमानतनुश्रियम् ॥२॥

विदग्धामण्डलगुरुं गुणगौरवपमण्डिताम्।
अतिप्रेष्ठवयस्याभिरष्टाभिरभिवेष्टिताम् ॥३॥

चञ्चलापाङ्गभङ्गेन व्याकुलीकृत केशवाम्।
गोष्ठेन्द्रसुतजीवातुरम्यबिम्बाधरामृताम् ॥४॥

त्वामसौ याचते नत्वा विलुठन् यमुनातटे।
काकुभिर्व्याकुलस्वान्तो जनो वृन्दावनेश्वरि॥५॥

कृतागस्केऽप्ययोग्येऽपि जनेऽस्मिन्कुमतावपि।
दास्यदानप्रदानस्य लवमप्युपपादय॥६॥

युक्तस्त्वया जनो नैव दुःखितोऽयमुपेक्षितुम्।
कृपाद्योतद्रवच्चित्तनवनीतासि यत्सदा॥७॥

(स्तवमालायां श्रीप्रार्थनापद्धतिः)

वृन्दावनेश्वरि! हे श्रीराधिके! आप तपाये हुए स्वर्णकी भाँति गौराङ्गी हैं, आपके नेत्र मृगीके चञ्चल एवं विस्तृत नयनोंके समान परम मनोहर हैं, आपका मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंको भी पराभूत कर रहा है, आप नवीन मेघ जैसे नीलाम्बरसे सुशोभित हो रही हैं॥१॥ आप सभी व्रज-गोपिकाओंके शिरोभूषण मल्लिका-कुसुम स्वरूप हैं, सुदिव्य रत्नादि अलङ्कारोंसे आपका श्रीअङ्ग सुशोभित हो रहा है॥२॥ परम रसिक एवं सुचतुर गोपियोंमें आप ही सर्वश्रेष्ठ और अशेष गुण-गौरवसे सुशोभित हैं। आप परम प्रियतमा अष्टसखियोंसे परिवेष्टित हैं॥३॥ आप अपनी बाँकी चितवनसे श्रीकृष्णको व्याकुल बना देती हैं, आपका अतिशय सुन्दर बिम्बाधरामृत व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके जीवनकी साक्षात् औषधि-स्वरूप है॥४॥ हे श्रीमती राधिके! मैं अत्यन्त व्याकुल हृदयसे यमुना तटपर भूमिपर लोटता हुआ आपको प्रणामपूर्वक कातर वचनोंसे यह प्रार्थना करता हूँ कि अपराधी, दुष्टमति और सब प्रकारसे अयोग्य होनेपर भी मुझे आप अपना किञ्चित्मात्र दासत्व प्रदानकर कृतार्थ करें॥५-६॥ हे कृपामयी! इस दुःखित जनकी उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है, क्योंकि कृपाके प्रभावसे आपका नवनीत जैसा कोमल हृदय सर्वदा द्रवीभूत रहता है॥७॥

श्रीरूपगोस्वामी कृत श्रीराधाकृष्णयुगल नामाष्टक—

राधामाधवयोरेतद्वक्ष्ये नामयुगाष्टकम्।
राधादामादरौ पूर्वं राधिकामाधवौ ततः॥१॥

वृषभानुकुमारो च तथा गोपेन्द्रनन्दनः।
गोविन्दस्य प्रियसखी गान्धर्वाबान्धवस्तथा॥२॥

निकुंजनागरा गोष्ठकिशोरजनशेखरौ।
वृन्दावनाधिपौ कृष्णवल्लभाराधिकाप्रियौ॥३॥

(स्तवमालायां श्रीराधामाधवयोर्नामयुगाष्टकम्)

अभी श्रीराधामाधवके युगल नामाष्टकरूप स्तवका कीर्त्तन करूँगा। पहले श्रीराधा-दामोदरके और तदनन्तर श्रीराधिका-माधवके स्तवका कीर्त्तन करूँगा॥१॥ वृषभानुकुमारी और गोपेन्द्रनन्दन, गोविन्दकी प्रियसखी और गान्धर्वा (राधिका) के प्रियबान्धव॥२॥ निकुञ्जवनकी नागरी और निकुञ्जवनके नागर, व्रजयुवतीवृन्दकी मुकुटमणि और व्रजयुवकोंके शिरोभूषण, वृन्दावनकी अधिष्ठात्री और वृन्दावनके अधीश्वर, श्रीकृष्णवल्लभा और श्रीराधावल्लभ आदि॥३॥

अपने प्रिय युगल नामोंका जिह्वासे कीर्त्तन एवं उन युगलकी अष्टकालीन लीलाओंका हृदयसे स्मरण करता हुआ प्रीतिपूर्वक व्रजवास करूँगा। अहो मन! ऐसा करता हुआ मैं कब श्रीगान्धर्वा-गिरिधरके श्रीचरणकमल विषयक प्रेम-विलासरूप सुधासागरमें निमज्जित होऊँगा और तुम्हें भी निमज्जित कराऊँगा॥६॥

सप्तम श्लोक

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्
कथं साधुप्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयितसामन्तमतुलं
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥७॥

सभी विषयोंका परित्यागर करनेपर भी कपटता क्यों नहीं दूर होती? इस संशयका निवारण करते हुए इस श्लोककी अवतारणा करते हैं—हे मन! जब तक मेरे हृदयमें (तुम मन ही मेरे हृदय हो) प्रतिष्ठाशारूपिणी निर्लज्जचाण्डालिनी उद्दण्ड होकर नृत्य कर रही है, तो तुम ही कहो, वहाँ निर्मल साधुप्रेम कैसे उदित हो सकता है? अतः तुम (काल विलम्ब न कर) भगवान्के अतिशय प्रियपात्र भक्तरूप अमित बलशाली सेनापतियोंका स्मरण और सेवा करो, वे शीघ्र ही उस चाण्डालिनीको दूर भगाकर निर्मल व्रजप्रेमका तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करा देंगे।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) धृष्टा श्वपचरमणी प्रतिष्ठाशा—अपनी प्रतिष्ठाकी आशाको 'प्रतिष्ठाशा' कहते हैं। अन्यान्य सभी अनर्थोंके दूर होनेपर भी प्रतिष्ठाकी आशा सहज ही दूर नहीं होती। उसीसे सब प्रकारकी कपटता और कुटिलता उत्पन्न होती है और क्रमशः पुष्ट होती है। यह प्रतिष्ठाशा सभी अनर्थोंकी जड़ होनेपर भी अपना दोष स्वीकार नहीं करती। इसीलिए इसे निर्लज्ज कहा गया है। यशरूपी कुत्तेके मांस-भोजनमें लगी रहनेके कारण इसे चाण्डालिनी भी कहा गया है। पूर्व श्लोकमें कथित स्वनिष्ठ साधक धार्मिक,

दाता, निष्पापी आदि परिचयोंसे अपनी मान-प्रतिष्ठा चाहते हैं। परिनिष्ठित साधक—"मैं भगवद्भक्त हूँ, मैं विषयोंसे सर्वथा निर्लिप्त हूँ"—इस प्रकारसे अपने यश-विस्तारकी आशा पोषण करते हैं। निरपेक्ष साधक—"मैं पक्का विरक्त हूँ", "मैंने शास्त्रोंका सारार्थ अच्छी तरह जान लिया है", "मेरी भक्ति सिद्ध हो गयी है"—ऐसी प्रतिष्ठाकी आशा रखते हैं। अतः जब तक प्रष्ठिाकी आशा दूर नहीं होती, तब तक कपटता भी दूर नहीं हो सकती तथा निष्कपट हुए बिना निर्मल साधुप्रेम भी प्राप्त नहीं होता।

(२) **निर्मल साधुप्रेम**—श्रीरूप गोस्वामीका इस विषयमें यह सिद्धान्त है—

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममतातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥
(भ॰ र॰ सि॰ १/४/१)

भाव या रति परिपक्व होनेपर जब गाढ़ता प्राप्त होती है तथा उसके फलस्वरूप साधकका चित्त जब सम्यक् रूपसे द्रवीभूत होने लगाता है तथा श्रीकृष्ण-विषयमें अतिशय ममतायुक्त हो जाता है, तब पण्डित लोग उसे प्रेम कहते हैं।

(३) **प्रभुदयित अतुल सामन्त**—प्रभु श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके दयित अर्थात् अतिशय प्रिय। अतुल अर्थात् जिनकी तुलना न हो। सामन्त अर्थात् सेनापति। श्रीनन्दनन्दनके अतिशय प्रिय कृष्णदासरूप अतुलनीय कृपालु एवं बलशाली सेनापतिकी सर्वदा सेवा करो। शुद्ध वैष्णवोंके हृदयमें ह्लादिनीशक्तिकी किरणें प्रतिफलित होती हैं। पुनः उनके हृदयसे वही शक्ति दूसरे श्रद्धालु साधकोंके हृदयमें सञ्चरित होकर उस साधक-हृदयकी दुष्टता, कपटता और कुटिलता आदि अनर्थोंको दूरकर वहाँ व्रजप्रेमका प्रकाश करती है। शुद्ध वैष्णवोंका आलिङ्गन (परस्पर अङ्क भरना), उनकी

चरणरज, अधरामृत (उच्छिष्ट प्रसाद), पद धौत जल और उपदेश आदि सब कुछ ह्लादिनीशक्तिका सञ्चार करनेमें समर्थ हैं। इसलिए पद्मपुराणमें वैष्णवोंकी आराधनाको भगवदाराधनासे भी बढ़कर बतलाया गया है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति! सब प्रकारकी आराधनाओंमें श्रीविष्णुकी आराधना सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु उनके भक्तोंकी आराधना उससे भी श्रेष्ठ है।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः।
रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्द्दनः॥
(श्रीमद्भा॰ ३/७/१८)

जिन भगवद्भक्तोंके श्रीचरणोंकी सेवासे नित्यसिद्ध त्रिकाल सत्य श्रीमधुसूदनके श्रीचरणकमलोंमें अनन्य प्रगाढ़ प्रेम उदित होता है तथा आनुषङ्गिक फलस्वरूप भव-बन्धनसे भी सदाके लिए छुटकारा मिल जाता है; ऐसे भगवत्-प्रिय भक्तोंकी सेवा अल्प सुकृतिवाले पुरुषोंको मिलना अत्यन्त कठिन है।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहते हैं—

भक्तपदधूलि आर भक्तपदजल।
भक्त-भुक्त-अवशेष,—तीन महाबल॥

एइ तिन सेवा हइते कृष्ण-प्रेमा हय।
पुनः पुनः सर्व-शास्त्रे फुकारिया कय॥
(चै॰ च॰ अ॰ १६/६०-६१)

भगवद्भक्तोंकी चरणरज, चरण-धौत जल और उच्छिष्ट महामहाप्रसाद—इनका सेवन करनेसे श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रेम होता है—ऐसी सभी शास्त्रोंमें पुनः-पुनः घोषणा की गयी है।

श्रीरूप गोस्वामी भी इस विषयमें कहते हैं—

यावन्ति भगवद्भक्तेरङ्गानि कथितानीह।
प्रायस्तावन्ति तद्भक्तभक्तेरपि बुधा विदुः॥

भगवद्भक्तिके जिन अङ्गोंका यहाँ उल्लेख किया गया है, उनमेंसे अधिकांश भगवद्भक्तोंके सम्बन्धमें भी पालनीय हैं—भक्ति तत्त्वतिद् पण्डितजन ऐसा कहते हैं।

और भी कहा गया है—

दृगम्भोभिर्धौतः पुलकपटलीमण्डिततनुः
स्खलन्नन्तःफुल्लो दधतिपृथुं वेपथुमपि।
दृशोः कक्षां यावन्मम स पुरुषः कौऽप्युपययौ
न जाने किं तावन्मतिरिह गृहे नाभिरमते॥

(भ॰ र॰ सि॰ १/२/२४१)

अहो! मैंने जबसे नेत्रजलसे स्नान किये हुए, रोम-रोम पुलकित अङ्गवाले, पग-पगपर स्खलित (लड़खड़ाते हुए), अन्दरसे परमानन्दमें निमग्न, भावावेशसे काँपते हुए शरीरवाले किसी अनिर्वचनीय (भक्त) पुरुषको देखा है, तबसे मेरा मन न जाने क्यों, घर-बारमें लगता ही नहीं है?

इसलिए भगवान्के प्रिय भक्तजन प्रभुके अतुलनीय प्रभाव सम्पन्न सेनापति हैं। उनकी सेवा सर्व प्रकारके अनर्थोंको सहज ही दूरकर परम दुर्लभ कृष्णप्रेमको उत्पन्न कराती है॥७॥

अष्टम श्लोक

यथा दुष्टत्वं मे दवयति शठस्यापि कृपया
यथा मह्यं प्रेमामृतमपि ददात्युज्ज्वलमसौ।
यथा श्रीगान्धर्वाभजनविधये प्रेरयति मां
तथा गोष्ठे काक्वा गिरिधरमिह त्वं भज मनः॥८॥

साधुसङ्ग द्वारा शक्ति-सञ्चारसे साधक-हृदयकी दुष्टता दूर होती है तथा सर्वार्थकी सिद्धि होती है। किन्तु ऐसा साधुसङ्ग सहज ही प्राप्त नहीं होता। इसलिए हे मन! तुम इस व्रजमें अतिशय दैन्यपूर्ण काकुति सहित (कातरतापूर्ण वाणीके साथ) श्रीगिरिधारी कृष्णका उसी प्रकारसे भजन करो, जिससे वे मुझपर प्रसन्न होकर मुझ शठकी शठताको अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा दूर करें, अपना परमोज्ज्वल प्रेमामृत प्रदान करें तथा श्रीमती राधिकाके भजनकी प्रेरणा प्रदान करें।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) दैन्य-काकुति—"मैं नितान्त असहाय और दीन-हीन व्यक्ति हूँ"—ऐसी भावनाके साथ निष्कपट प्रार्थना। श्रीरूप गोस्वामीकी एक ऐसी ही दीनतापूर्ण निष्कपट प्रार्थना नीचे दी जा रही है—

श्रीगान्धर्वासंप्रार्थनाष्टकम्

वृन्दावने विहरतोरिह केलिकुञ्जे
मत्तद्विपप्रवरकौतुकविभ्रमेण ।
सन्दर्शयस्व युवयोर्वदनारविन्द-
द्वन्द्वं विधेहि मयि देवि! कृपां प्रसीद॥१॥

हा देवि! काकुभरगद्गदयाद्य वाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा
गान्धर्विके! निजगणे गणनां विधेहि॥२॥

श्यामे! रमारमणसुन्दरतावरिष्ठ–
सौन्दर्यमोहितसमस्तजगज्जनस्य।
श्यामस्य वामभुजबद्धतनुं कदाहं
त्वामिन्दिराविरलरूपभरां भजामि॥३॥

त्वां प्रच्छदेन मुदिरच्छविना पिधाय
मञ्जीरमुक्तचरणां च विधाय देवि!
कुञ्जे व्रजेन्द्रतनयेन विराजमाने
नक्तं कदा प्रमुदितामभिसारयिष्ये॥४॥

कुञ्जे प्रसूनकुलकल्पितकेलितल्पे
संविष्टयोर्मधुरनर्मविलासभाजोः।
लोकत्रयाभरणयोश्चरणाम्बुजानि
संवाहयिष्यति कदा युवयोर्जनोऽयम्॥५॥

त्वत्कुण्डरोधसि विलासपरिश्रमेण
स्वेदाम्बुचुम्बिवदनाम्बुरुहश्रियौ वाम्।
वृन्दावनेश्वरि! कदा तरुमूलभाजौ
संवीजयामि चमरीचयचामरेण॥६॥

लीनां निकुञ्जकुहरे भवतीं मुकुन्दे
चित्रैव सूचितवती रुचिराक्षि! नाहम्।
भुग्नां भ्रुवं न रचयेति मृषा रुषां त्वा–
मग्रे व्रजेन्द्रतनयस्य कदा नु नेष्ये॥७॥

वाग्युद्धकेलिकुतुके व्रजराजसूनुं
जित्वोन्मदामधिकदर्पविकासिजल्पाम्।

फुल्लाभिरालिभिरनल्पमुदीर्यमाण-
स्तोत्रां कदा नु भवतीमवलोकयिष्ये॥८॥

यः कोऽपि सुष्ठु वृषभानुकुमारिकायाः
संप्रार्थनाष्टकमिदं पठति प्रपन्नः।
सा प्रेयसा सह समेत्य धृतप्रमोदा
तत्र प्रसादलहरीमुररीकरोति॥९॥
(स्तवमालायाम्)

हे देवि राधिके! आप दोनों (श्रीराधाकृष्ण) मत्तगजेन्द्रके कौतुक-विलासपूर्वक, इस वृन्दावनमें नित्य विहार करते रहते हो, अतः हे गान्धर्विके! आप मुझपर प्रसन्न हों और कृपाकर आप दोनोंके युगल मुखारविन्दका दर्शन करायें॥१॥ हे देवि गान्धर्विके! मैं बड़ा दुःखी हूँ, अतः दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लोटकर कातरतापूर्वक गद्गद वाणीसे आपके श्रीचरणकमलोंमें प्रार्थना करता हूँ कि मुझ अज्ञानी जनपर कृपा करके अपने परिकरोंमें मेरी भी गिनती कर लीजिये॥२॥ हे श्रीमती श्यामे! श्रीमन्नारायणसे भी परम सुन्दर अपने सौन्दर्यके द्वारा समस्त जगत्-जनोंको मोहित करनेवाले श्यामसुन्दरकी बायीं भुजासे आलिङ्गित, श्रीलक्ष्मीसे भी परम रूपवती आपका भजन मैं कब करूँगा?॥३॥ हे देवि राधिके! मैं आपकी सेविका बनकर, मेघ जैसी नीलरङ्गकी ओढ़नी (नीलाम्बर) द्वारा आपके श्रीअङ्गको ढककर, आपके श्रीचरणयुगलोंसे नूपुरोंको उतारकर अभिसारिकाके योग्य वेश-भूषासे सजाकर, सब प्रकारसे उत्कण्ठित एवं प्रसन्न चित्त आपका, रात्रिकालमें श्रीनन्दनन्दन-सुशोभित निकुञ्ज भवनमें कब अभिसार कराऊँगी?॥४॥ हे देवि! त्रिभुवनके भूषणस्वरूप आप-युगल, निकुञ्जमें विविध प्रकारके पुष्पोंसे रचित कोमल शय्यापर शयन करके जब विविध प्रकारकी हास-परिहासमयी नर्म क्रीड़ा कर रहे होंगे, उसी समय आप दोनोंके श्रीचरणारविन्दोंकी सेवाका शुभ अवसर सेविका रूपमें मुझे कब प्राप्त होगा?॥५॥ हे श्रीवृन्दावनेश्वरि! स्मर-विलासके

परिश्रमसे जब आप युगलके श्रीमुखारविन्द पसीनेकी बूँदोंसे सुशोभित हो रहे होंगे, और उसी रूपमें विश्राम करनेके लिए जब अपने श्रीकुण्ड (श्रीराधाकुण्ड) के तटपर सुन्दर कदम्ब वृक्षकी छायामें बैठे होंगे, उस अवस्थामें मैं सेविका रूपमें आप दोनोंपर कब रत्नदण्डसे सुशोभित चँवरके द्वारा संवीजन करूँगी अर्थात् चँवर ढुलाऊँगी?॥६॥ हे सुन्दरलोचने श्रीराधिके! देखें, जब आप कौतुकवश निकुञ्जके किसी गुप्त-स्थानरूप-बिलमें छिप जावेंगी, तब श्रीकृष्णको आपके छिपनेके स्थानका पता लग जानेपर, आपके समीप आ जानेपर, आप मुझसे पूछेंगी कि—"क्यों री रूपमञ्जरि! क्या तुमने इन्हें मेरे छिपनेका स्थान बतला दिया है?" तब मैं उत्तर दूँगी कि—"नहीं, नहीं, मैंने नहीं बतलाया, चित्रा सखीने बतलाया है। अतः मेरे ऊपर भ्रकुटी टेढ़ी न करें।" इस प्रकार मेरे ऊपर मिथ्या कोप करनेवाली आपको देखकर मैं श्रीकृष्णके सामने आपसे अनुनय-विनय कब करूँगी? मेरा ऐसा शुभ दिन कब उपस्थित होगा?॥७॥ उस समय आप वाग्युद्धरूप क्रीड़ा-कौतुकमें श्रीकृष्णको पराजितकर जब अत्यन्त हर्षित होंगी और आपका वाग्विलास आपके दर्पको अतिशय विकसित करनेवाला होगा, तब अपनी स्वामिनीकी विजयोल्लाससे प्रफुल्लित हुई सखियाँ, आपकी "जय हो, जय हो"—इस प्रकार स्तुति करेंगी, ऐसी स्थितिमें मैं कब आपका दर्शन पाऊँगी?॥८॥ जो कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक भक्तिभावसे शरणागत होकर श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाके इस सम्प्रार्थनाष्टकका नियमित रूपसे पाठ करता है, श्रीराधिकाजी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ प्रसन्न होकर उसके ऊपर प्रचुर कृपा करती हैं॥९॥

(२) मुझ शठकी शठता—शठता ही बद्धजीवोंकी दुष्टता है। शुद्धजीव स्वाभाविक रूपमें सरल होते हैं। अविद्याका आश्रय करनेके साथ-ही-साथ जीव शठ, दाम्भिक, प्रतिष्ठा-लोलुप, कपटी और दुराचारी होकर भगवत्तत्त्वसे बहुत दूर हो जाते हैं। वे जीव

साधुसङ्गके प्रभावसे जब अपनेको तृणसे भी सुनीच-दीन-हीन जानकर तथा दूसरोंको यथायोग्य सम्मान देते हुए श्रीहरिनामका आश्रय करते हैं, तभी श्रीकृष्ण एवं उनके प्रिय भक्तजन उनपर कृपा करते हैं और तभी वे दुर्ल्लभ कृष्णप्रेमको प्राप्त करते हैं।

(३) उज्ज्वल प्रेमामृत—उज्ज्वलका तात्पर्य शृङ्गाररससे है। शृङ्गाररसका नामान्तर मधुररस भी है। श्रीरूप गोस्वामी मधुररसके सम्बन्धमें कहते हैं—

मुख्यरसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितोऽति रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्तिरसराट् स विस्तारेणोच्यते मधुरः॥

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः स्वाद्यतां मधुरा रतिः।
नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीषिभिः॥

(श्रीउज्ज्वलनीलमणि १/२-३)

भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें नाना जातीय भक्ति अनुशीलनीय है। उसमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँचों मुख्य रसोंका वर्णन होनेपर भी पहले चार रसोंका वर्णन विस्तारपूर्वक और मधुररस सर्वप्रधान होनेपर भी इसका वर्णन संक्षेपमें किया गया है। मधुररस भक्तिरसराज है। यह शान्तादि दूसरे भक्तोंके लिए अनुपयोगी, वैधीमार्गमें प्रगाढ़ आसक्त चित्तवाले साधकोंके लिए सुगोप्य एवं दुरूह होनेके कारण अन्यान्य रसोंके साथ इसका एकत्र वर्णन करना उचित नहीं समझा गया। अतः रागमार्गीय भक्तोंमें भी केवल मधुररसाश्रित भक्तोंके रसास्वादनके लिए उपयोगी बनाकर श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें विस्तारपूर्वक इस मधुररसका वर्णन किया गया है। आगे कहे जानेवाले विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी आदि भावोंके द्वारा मधुरारति विभावित होकर जब आस्वादन योग्य होती है, तब रसतत्त्वविद् मनीषिगण उसे मधुर रस कहते हैं।

शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्यमें जो रति स्थायीभाव होती है, उसमें विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—ये चार भाव मिलकर रसताको प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार मधुररसमें भी जानना चाहिये। मधुररसमें कृष्ण विषयालम्बन हैं तथा कृष्णवल्लभा गोपिकाएँ आश्रय-आलम्बन हैं। उनके गुणसमूह उद्दीपन हैं। लीलाविलासके समय श्रीकृष्ण-वल्लभाओं और स्वयं श्रीकृष्णमें भी समय-समयपर अष्टसात्त्विक भाव और तैंतीस व्यभिचारी भावसमूह उदित होकर रस-समुद्रको तरङ्गायित करते हैं। साधनभक्ति भावभक्तिके रूपमें परिणत होते ही स्थायीभाव प्रकट होता है। विभाव, अनुभाव आदिके संयोगसे रसस्वरूपता प्राप्त होनेपर प्रेमाभक्ति होती है। इसीको भक्तिरस कहा गया है।

श्रीकृष्णकी वृन्दावनलीला तथा व्रजमण्डलमें प्रियतमा गोपिकाओंके साथ होनेवाली सारी लीलाएँ इस रसके उदाहरण हैं। सौभाग्यसे जिन्हें इस मधुररसके प्रति लोभ हो जाता है, गोपियोंके अनुगत होकर पूर्वोक्त प्रकारसे कातरतापूर्वक गद्‌गद वाणीसे प्रार्थना करते-करते जब उनपर श्रीमती राधिकाकी कृपा होती है, तब ह्लादिनीशक्तिकी किरणें उनके हृदयमें प्रवेशकर इस रसको प्रकट कर देती हैं। इसके अतिरिक्त इस मधुररसकी प्राप्तिका कोई भी दूसरा पथ नहीं है।

(४) श्रीगान्धर्वा भजन—कभी-कभी अणु चैतन्य जीव ज्ञानमार्गसे साधन करनेपर ब्रह्मानन्द या आत्मानन्दका अनुभवकर उसीमें मग्न हो जाता है। किन्तु वह ब्रह्मानन्द या आत्मानन्द, परमानन्द या प्रेम-सेवानन्दकी तुलनामें अतिशय क्षुद्र है, जैसे सूर्यके समान खद्योतका प्रकाश। अणु चैतन्य जीव जब तक प्रेमानन्दका परिचय प्राप्त नहीं करता, तब तक ब्रह्मानन्द या आत्मानन्दरूप क्षुद्र आनन्दको ही सर्वस्व मान लेता है। ह्लादिनीशक्तिकी कृपा प्राप्त किये बिना परमानन्द प्राप्तिमें अधिकार नहीं मिलता। उसकी प्रणाली यह है कि अतिशय दीनतापूर्वक रागात्मिक

व्रजवासियोंके भावको देखने-सुननेसे जब उसके हृदयमें उस भावको प्राप्त करनेका लोभ उत्पन्न हो जाये, तब श्रीमती राधिकाकी सखियोंमेंसे किसी सखी या उनकी अनुचरी किसी मञ्जरीका चरणाश्रय ग्रहणकर सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार सेवा करते-करते जैसे-जैसे उनकी योग्यता बढ़ती जायेगी, उतने ही अधिक रूपमें उसका सेवा-अधिकार बढ़ता जाता है। सखियोंकी कृपासे ही श्रीमती रधिकाकी कृपा प्राप्त होती है। यह कृपा जितनी ही अधिक प्राप्त होती है, ह्लादिनीशक्ति भी उतने ही अधिक रूपमें उसके हृदयमें सञ्चरित होती है। इस प्रकार क्रमशः श्रीराधाकृष्णकी यथायोग्य नित्य प्रेममयी सेवाकी प्राप्ति होती है।

जो लोग चित्-राज्यमें नित्य चित्-विलासको स्वीकार नहीं करते, वे सर्वशक्तिमान एवं रसस्वरूप परमतत्त्वको पूर्णतः न माननेके दोषी होते हैं। वे लोग कृपामार्गसे भ्रष्ट होकर प्रेममयी सेवासे वञ्चित हो जाते हैं। साथ ही साधकका जब तक अपनेमें संसारी जड़पुरुषका अभिमान रहता है, तब तक उसे इस व्रजभावमयी सेवामें अधिकार नहीं होता। जड़ीय स्त्री या पुरुष देहसे उसका किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं होता। केवल अणु चैतन्य शुद्ध-जीव स्वरूपमें जो स्त्रीभाव होता है, वही उसके लिए उपयोगी है। साधनके समय जड़ देहगत स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध मनमें लानेसे साधक साधनमार्गसे भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे लोगोंसे दूर रहकर, श्रीमती राधिकाके श्रीचरणकमलोंके अनन्य आश्रित रागानुगीय रसिक भक्तोंके अनुगत होकर भजन करना ही श्रीगान्धर्वा-भजन कहलाता है॥८॥

नवम श्लोक

मदीशानाथत्वे व्रजविपिनचन्द्रं व्रजवनेश्वरीं
मन्नाथत्वे तदतुलसखीत्वे तु ललिताम्।
विशाखां शिक्षालीवितरणगुरुत्वे प्रियसरो-
गिरीन्द्रौ तत्प्रेक्षाललितरतिदत्वे स्मर मनः ॥९॥

अब मधुररसके रागानुगीय भजनमें परस्पर कैसा सम्बन्ध होना चाहिये, इस विषयमें उपदेश कर रहे हैं—हे मन! तुम वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्णको मेरी स्वामिनी श्रीराधिकाके प्राणनाथ रूपमें, वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाको मेरी स्वामिनी रूपमें, श्रीललिताजीको स्वामिनी श्रीराधिकाजीकी अतुलनीय सखी रूपमें, श्रीविशाखाजीको श्रीयुगल-सेवा परिपाटीकी शिक्षा देनेवाली गुरु रूपमें तथा श्रीराधाकुण्ड और गिरिराज गोवर्धन—इन दोनोंको श्रीराधाकृष्णका दर्शन करानेवाले तथा उनके श्रीचरणकमलोंमें मनोहर रतिप्रदाताके रूपमें सदा-सर्वदा स्मरण करो।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) व्रजविपिनचन्द्रका स्मरण—(क) इस विषयमें श्रीरूप गोस्वामी कृत मुकुन्दमुक्तावली स्तवके दो श्लोक दिये जा रहे हैं—

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम्।
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम्॥१॥

मुखजितशरदिन्दुः केलिलावण्यसिन्धुः
करविनिहितकन्दुर्वल्लवीप्राणबन्धुः ।

वपुरुपसृतरेणुः कक्षनिक्षिप्तवेणु-
र्वचनवशगधेनुः पातु मां नन्दसूनुः॥२॥
(स्तवमाला)

नवीन मेघके समान अङ्गकान्तिवाले, चम्पकके फूलोंसे सुशोभित सुन्दर कर्णवाले, विकसित कमल पुष्पकी भाँति मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त सुन्दर मुखमण्डलवाले, सुवर्णकान्ति जैसे पीताम्बरको धारण करनेवाले, सुन्दर मोर-मुकुटसे सुशोभित मस्तकवाले, तीनों लोकोंके सार-स्वरूप किसी गोपीकुमारका स्तव करता हूँ॥१॥ शरत्-कालीन चन्द्रसे भी जिनका श्रीमुखमण्डल अधिक सुन्दर है, जो केलि-क्रीड़ाके उपयोगी लावण्यके सागर हैं, जिनके हाथोंमें क्रीड़ा-कन्दुक (गेंद) सुशोभित है, जो व्रज-रमणियोंके प्राणबन्धु हैं, गौवोंके खुरसे उड़ी हुई धूलिकणोंसे जिनका कलेवर सुशोभित है, जिनके बायें कक्षमें मुरली विराजित है तथा धेनुसमुदाय जिनके वचनोंके वशीभूत हैं, ऐसे श्रीनन्दनन्दन मेरी रक्षा करें॥२॥

(ख)

विरचय मयि दण्डं दीनबन्धो दयां वा
गतिरिह न भवतः काचिदन्या ममास्ति।
निपततु शतकोटिर्निर्भरं वा नवाम्भ-
स्तदपि किल पयोदः स्तूयते चातकेन॥

प्राचीनानां भजनमतुलं दुष्करं शृण्वतो मे
नैराश्येन ज्वलति हृदयं भक्तिलेशालसस्य।
विश्वद्रीचीमघहर तवाकर्ण्य कारुण्यवीची-
माशाबिन्दूक्षितमिदमुपैत्यन्तरे हन्त शैत्यम्॥
(स्तवमाला, त्रिभङ्गीपञ्चकम्)

हे दीनबन्धो! मेघगण प्यासे चातकके ऊपर अभिनव जलधारा बरसावें अथवा वज्र निक्षेप करें, चातकोंके लिए कोई दूसरा उपाय नहीं; इसलिए वे निरन्तर मेघका स्तव करते नहीं थकते; उसी प्रकार आप मेरे ऊपर दया करें अथवा दण्डका विधान

करें—जैसी इच्छा हो करें, इस संसारमें आपको छोड़कर मेरे लिए और कोई उपाय नहीं है। हे अघहर! शुक, अम्बरीष आदि प्राचीन महात्माओंके अत्यन्त कठिन भजनसाधनकी बात सुनकर निराशासे मेरा भक्तिशून्य हृदय सर्वथा अनुतप्त हो रहा है, क्योंकि मेरे लिए वैसा कठिन भजनसाधन कदापि सम्भव नहीं, अतः आपके श्रीचरणोंकी प्राप्ति भी सम्भव नहीं है। किन्तु ब्रह्मा आदिसे लेकर पामर (जघन्य पापी) तक सर्वत्र फैली हुई आपकी कृपाकी लहरियोंको देखकर कुछ आशाकी किरणोंसे हृदय पुनः सुशीतल हो रहा है।

(२) श्रीवृन्दावनेश्वरी (श्रीमती राधिका) को मेरी स्वामिनी जानना—श्रीरघुनाथदास गोस्वामी अपनी विलापकुसुमाञ्जलिमें श्रीमती राधिकाजीको अपनी स्वामिनी मानकर अनन्य भावसे उनकी सेवा-प्राप्तिके लिए कातर होकर प्रार्थना करते हैं—

अत्युत्कटेन नितरां विरहानलेन
दन्दह्यमानहृदया किल कापि दासी।
हा स्वामिनि क्षणमिह प्रणयेन गाढ-
माक्रन्दनेन विधुरा विलपामि पद्यैः॥

देवि दुःखकुलसागरोदरे दूयमानमतिदुर्गतं जनम्।
त्वं कृपाप्रबलनौकयाऽद्भुतं प्रापय स्वपदपङ्कजालयम्॥

हे स्वामिनि! श्रीराधिके! मैं आपकी दासी हूँ। किन्तु आपकी अतिशय तीव्र विरहाग्निसे मेरा हृदय जल रहा है। मैं रोते-रोते अत्यन्त कातर हो रही हूँ। और कोई उपाय नहीं देखकर श्रीगोवर्धनके किसी स्थानमें (श्रीराधाकुण्डके तटमें) वासकर कतिपय पद्योंके द्वारा आपके श्रीचरणोंमें कुछ निवेदन कर रही हूँ। आप प्रसन्न हों। व्रजविलासिनि हे श्रीराधिके! मैं निखिल दुःखरूपी अगाध समुद्रके गर्भमें पड़ी हुई अत्यन्त सन्तप्त और दुर्दशाग्रस्त हूँ। परम करुणामयि! आप मुझे अपनी कृपारूपी सुदृढ़ नौकामें चढ़ाकर अपने श्रीचरणकमलोंकी साक्षात् सेवा प्रदान करें।

(३) श्रीललिताजीको श्रीमती राधिकाकी अतुलनीय सखीके रूपमें स्मरण—श्रीरूप गोस्वामी कृत श्रीललिताष्टकमें यह भाव स्पष्ट है—

राधामुकुन्द पदसम्भवघर्मबिन्दु-
निर्मञ्छनोपकरणीकृत देहलक्षाम्।
उत्तुङ्गसौहृदविशेषवशात् प्रगल्भां
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥१॥

राका-सुधा-किरण-मण्डल-कान्ति-दण्डि-
वक्त्रश्रियं चकित-चारु-चमूरुनेत्राम्।
राधाप्रसाधनविधान-कलाप्रसिद्धां
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥२॥

लास्योल्लसद्भुजग-शत्रुपतत्रचित्र-
पट्टांशुकाभरण-कञ्चुलिकाञ्चिताङ्गीम्।
गोरोचनारुचि-विगर्हण-गौरिमाणं
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥३॥

धूर्ते व्रजेन्द्रतनये तनु सुष्ठुवाम्यं
मा दक्षिणा भव कलंकिनि लाघवाय।
राधे गिरं शृणु हितामिति शिक्षयन्तीं
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥४॥

राधामभि-व्रजपतेः कृतमात्मजेन
कूटं मनागपि विलोक्य विलोहिताक्षीम्।
वाग्भङ्गिभिस्तमचिरेण विलज्जयन्तीं
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥५॥

वात्सल्य-वृन्दवसतिं पशुपालराज्ञ्याः
सख्यानुशिक्षणकलासु गुरुं सखीनाम्।
राधाबलावरज-जीवितनिर्विशेषां
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥६॥

यां कामपि व्रजकुले वृषभानुजायाः
　　प्रेक्ष्य स्वपक्ष-पदवीमनुरुद्ध्यमानाम्।
सद्यस्तदिष्ट-घटनेन कृतार्थयन्तीं
　　देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥७॥

राधा-व्रजेन्द्रसुत-संगम-रङ्गचर्यां
　　वर्यां विनिश्चितवतीमखिलोत्सवेभ्यः।
तां गोकुलप्रियसखी-निकुरम्बमुख्यां
　　देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि॥८॥

श्रीराधामाधवके श्रीचरणकमलोंकी झलकती हुई पसीनेकी बूँदोंको पोंछनेमें जिनका शरीर नियुक्त है और अत्यन्त उन्नत सौह्लादरससे जो सदैव अवश रहती हैं, उन सौन्दर्य, माधुर्य और गाम्भीर्य आदि विभिन्न गुणोंसे मनोहारिणी प्रगल्भा श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ॥१॥ जिनके श्रीमुखमण्डलकी शोभा पूर्ण चन्द्रमण्डलकी कान्तिका भी तिरस्कार करती है, जिनके नेत्र चकित हुई हिरणीके नेत्रोंकी भाँति अतिशय चञ्चल हैं और श्रीमती राधिकाकी वेश-रचनाकी कलामें असाधारण निपुणताके कारण सुप्रसिद्ध हैं, उन स्त्रीजनोचित अशेष गुणोंकी खान श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ॥२॥ उद्धत नृत्यमें अतिशय उल्लसित मयूरके रङ्ग-बिरङ्गे विचित्र पंखों जैसे सुन्दर रङ्गीन पट्टवस्त्र, झलकते हुए सीमन्त और हारादि विचित्र रत्नाभूषणों और अति विचित्र कञ्चुकीसे जिनका श्रीअङ्ग अत्यन्त विभूषित है तथा जो अपनी गौरकान्तिसे गोरोचनकी कान्तिको भी पराभूत करती हैं, उन असीम गुणवती ललिता देवीको नमस्कार करता हूँ॥३॥ हे कलङ्किनि! राधिके! तुम मेरी हितकर बातें सुनो। व्रजेन्द्रनन्दन बड़े धूर्त हैं। उनके प्रति तुम दाक्षिण्य भाव—अनुकूलता प्रकाश मत करो, बल्कि सर्वतोभावेन प्रतिकूलता ही प्रकाश करो, इस प्रकार श्रीमती राधिकाको जो शिक्षा देती हैं, उन समस्त गुणोंकी खान मनोहारिणी श्रीललितादेवीको

नमस्कार करता हूँ॥४॥ श्रीमती राधिकाके प्रति श्रीकृष्णकी थोड़ी-सी भी छल-चातुरीपूर्ण बातोंको सुनकर अत्यन्त क्रोधित होकर जो "आप बड़े सत्यवादी हैं, सरल हैं और विशुद्ध प्रणयी हैं"—इत्यादि वचन-भङ्गी द्वारा श्रीकृष्णको लज्जित करती हैं, उन सब गुणोंकी निधान परम मनोहरा उन ललिताजीको प्रणाम करता हूँ॥५॥ जो गोपराज श्रीनन्द महाराजकी राजमहिषी श्रीमती यशोदा देवीके वात्सल्यरसकी निवासभूमि हैं, सारी सखियोंको सख्य-विषयक शिक्षा देनेवाली गुरु हैं तथा श्रीमती राधिका एवं दाऊजीके छोटे भैया जिनके प्राणस्वरूप हैं, उन निखिल गुणवती परम मनोहारिणी श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ॥६॥ व्रज भरमें कहीं भी किसी युवतीको देखकर उसमें अपनी प्रियसखी श्रीमती राधिकाके प्रति स्वपक्षकी गन्ध जान लेनेपर, उसी समय उसकी सारी मनोकामनाओंको पूर्णकर उसे कृतार्थ कर देती हैं, उन सर्वगुणसम्पन्न परम मनोहारिणी श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ॥७॥ श्रीराधागोविन्दका परस्पर मिलन कराकर उनका मनोविनोद करना ही जिनका सर्वाभीष्ट कार्य है और दूसरे निखिल उत्सवोंसे इस विनोदन कार्यमें ही जिनकी अधिक स्पृहा है, गोकुलकी प्रिय सखियोंमें भी सर्वप्रधाना, सारे गुणोंकी धामस्वरूपा श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ॥८॥

(४) श्रीविशाखाजीको शिक्षागुरु मानना—श्रीयमुनाजीको अभिन्न विशाखा माना जाता है। श्रीबलदेव विद्याभूषणजीने भी ऐसा माना है—

विशाखोरसि या विष्णोर्यस्यां विष्णुर्जलात्मनि।
नित्यं निमज्जति प्रीत्या तां सौरीं यमुनां स्तुमः॥

इसलिए श्रीयमुनाकी स्तुति भी श्रीविशाखाजीकी ही स्तुति है। श्रीरूप गोस्वामीकृत 'श्रीयमुनाष्टक' इस प्रकार है—

श्रीयमुनाष्टकम्

भ्रातुरन्तकस्य पत्तनेऽभिपत्तिहारिणी
प्रेक्षयातिपापिनोऽपि पापसिन्धुतारिणी।
नीरमाधुरीभिरप्यशेषचित्तबन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥१ ॥

हारिवारिधारयाभिमण्डितोरुखाण्डवा
पुण्डरीकमण्डलोद्यदण्डजालिताण्डवा ।
स्नानकामपामरोग्रपापसंपदन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥२ ॥

शीकराभिमृष्टजन्तु–दुर्विपाकमर्दिनी
नन्दनन्दनान्तरंगभक्तिपूरवर्धिनी ।
तीरसंगमाभिलाषिमंगलानुबन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥३ ॥

द्वीपचक्रवालजुष्टसप्तसिन्धुभेदिनी
श्रीमुकुन्दनिर्मितोरुदिव्यकेलिवेदिनी ।
कान्तिकन्दलीभिरिन्द्रनीलवृन्दनिन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥४ ॥

माथुरेण मण्डलेन चारुणाभिमण्डिता
प्रेमनद्धवैष्णवाध्ववर्धनाय पण्डिता।
ऊर्मिदोर्विलासपद्मनाभपादवन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥५ ॥

रम्यतीररंभमाणगोकदम्बभूषिता
दिव्यगन्धभाक्कदम्बपुष्पराजिरूषिता ।
नन्दसूनुभक्तसंघसंगमाभिनन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥६ ॥

फुल्लपक्षमल्लिकाक्षहंसलक्षकूजिता
भक्तिविद्धदेवसिद्धकिन्नरालिपूजिता ।

तीरगन्धवाहगन्धजन्मबन्धरन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी॥७॥

चिद्विलासवारिपूरभूर्भुवःस्वरापिनी
कीर्त्तितापि दुर्मदोरुपापमर्मतापिनी।
बल्लवेन्द्रनन्दनाङ्गरागभङ्गगन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी॥८॥

तुष्टबुद्धिरष्टकेन निर्मलोर्मिचेष्टितां
त्वामनेन भानुपुत्रि! सर्वदेववेष्टिताम्।
यः स्तवीति वर्धयस्व सर्वपापमोचने
भक्तिपूरमस्य देवि! पुण्डरीकलोचने॥९॥

जो अपने भ्राता यमराजके नगर—यमपुरीमें जानेसे रोकनेवाली हैं, अपने दर्शनमात्रसे पापीजनोंको भी पापसिन्धुसे पार लगानेवाली हैं और अपने जलकी माधुरी-श्रेणीके द्वारा सभी जनोंके चित्तको अपनेमें निबद्ध करनेवाली हैं, वे सूर्यपुत्री यमुनाजी मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें॥१॥ जिन्होंने अपनी मनोहर जलधारासे इन्द्रके विशाल खाण्डवनामक वनको विभूषित कर दिया है, जिनमें खिले हुए श्वेतकमलके पुण्य-श्रेणीपर खञ्जन आदि पक्षीवृन्द सुखसे नृत्य करते हैं तथा जो अपनेमें स्नान करनेवालोंकी तो बात ही क्या, स्नानकी अभिलाषावाले पापियोंके भयङ्कर पापराशियोंको भी अन्धी बना देती हैं अर्थात् अपनेमें स्नान करनेकी इच्छामात्रसे भी महापातकोंको विनष्ट करनेवाली हैं, वे सूर्यपुत्री यमुनाजी मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें॥२॥ जो अपने जलकणसे स्पर्श करनेवाले प्राणीमात्रके, दुष्कर्मजनित फलको विनष्ट करनेवाली हैं, जो नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी अन्तरङ्ग अर्थात् रागानुगाभक्तिकी धाराको बढ़ानेवाली हैं तथा अपने तटपर निवास करनेकी अभिलाषावाले जनमात्रका कल्याण करनेवाली हैं, वे सूर्यपुत्री यमुनाजी मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें॥३॥ जो सप्तद्वीपमण्डलसे सेवित सातों समुद्रोंका भेदन करनेवाली हैं, अर्थात् सातों समुद्रोंको फोड़कर, दूसरी

नदियोंकी तरह उनमें विलीन न होकर पार जानेवाली हैं; अतः अचिन्त्य प्रभावशाली हैं, जो श्रीकृष्णके द्वारा निर्मित विशाल अप्राकृत क्रीड़ाओंको जाननेवाली हैं अर्थात् अपने आश्रय करनेवाले जनोंके हृदयमें उन अप्राकृत लीलाओंको प्रकटित करनेवाली हैं तथा अपनी शोभाकी ध्वजाओंके द्वारा इन्द्रनीलमणियोंके समूहका तिरस्कार करनेवाली हैं, वे तपन-तनया श्रीयमुनाजी मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें॥४॥ जो परम मनोहर मथुरामण्डलके द्वारा मण्डित हैं, जो प्रेमसे बँधे हुए वैष्णवमार्गको अर्थात् रागानुगा-भक्तिमार्गको बढ़ानेके लिए पण्डित (निपुण) हैं, अर्थात् अपनेमें स्नान करनेवाले वैष्णवोंके हृदयमें, रागानुगाभक्तिको स्वयं प्रकट करनेवाली हैं तथा अपनी तरङ्गरूप भुजाओंके विलासके द्वारा श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना करनेवाली हैं, वे रवि-तनया श्रीयमुनाजी मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें॥५॥ जो अपने परमरमणीय दोनों तटोंपर रँभाते हुए गोगणसे विभूषित हैं, दिव्य-गन्धसे सुवासित कदम्ब-पुष्पोंकी पंक्तिसे युक्त हैं तथा श्रीनन्दनन्दनके प्रिय भक्तवृन्दके सम्मिलनसे सदा हर्षित होती रहती हैं, वे सूर्यपुत्री श्रीयमुनाजी मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें॥६॥ जो खुले हुए पंखोंवाले प्रफुल्लित लाखों राजहंसोंके द्वारा शब्दायमान हैं अर्थात् जिनके ऊपर लाखों राजहंस कलरव करते रहते हैं, जो हरि-सेवामें अनुरक्त चित्तवाले देव, सिद्ध, नर, किन्नर आदिकी पंक्तिसे पूजित हैं तथा अपने तीरपर बहनेवाले वायुके लेशमात्र सम्बन्धसे, प्राणियोंके पुनर्जन्मके बन्धनको काटनेवाली हैं, वे सूर्य-नन्दिनी श्रीयमुनाजी मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें॥७॥ जो अपने जल-प्रवाहके द्वारा श्रीराधाकृष्ण-युगलकी अप्राकृत लीला-विलासरूप चिद्विलासको पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—तीनों लोकोंमें व्याप्त करनेवाली हैं, अपने नामसङ्कीर्त्तन करनेमात्रसे भी दुर्दमनीय विशाल पापराशिके मर्मको सम्पूर्ण रूपसे दग्ध करनेवाली हैं तथा व्रजराज-कुमार श्रीकृष्णके श्रीअङ्गमें लिप्त कुङ्कुम, चन्दन आदि अङ्गरागसे परम सुगन्धित रहती हैं, वे सूर्यपुत्री श्रीयमुनाजी मुझे

सदैव पवित्र बनाती रहें॥८॥ हे सूर्यपुत्रि! देवि! श्रीयमुने! सन्तुष्ट बुद्धिवाला जो व्यक्ति, इस अष्टकके द्वारा निर्मल तरङ्गरूप चेष्टावाली एवं सभी देवताओंसे परिवेष्टित स्वरूपवाली आपकी स्तुति करता है, उस स्तुति पाठकके भक्तिप्रवाहको आप, अविद्यापर्यन्त समस्त पापोंसे विमुक्त करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्णमें बढ़ाती रहें—आपके श्रीचरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है॥९॥

(५) ललित रतिद राधाकुण्डका स्मरण—श्रीराधाकृष्ण युगलके श्रीचरणकमलोंमें ललित रति प्रदान करनेवाले श्रीराधाकुण्डका स्मरण। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी कृत 'विलापकुसुमाञ्जलि' में ऐसी ही प्रार्थना है—

हे श्रीसरोवर! सदा त्वयि सा मदीशा
प्रेष्ठेन सार्द्धमिह खेलति कामरङ्गैः।
त्वं चेत् प्रियात् प्रियमतीव तयोरितीमां
हा दर्शयाद्य कृपया मम जीवितं ताम्॥
(९८वाँ श्लोक)

हे श्रीराधाकुण्ड! तुम्हारे तीरपर मेरी स्वामिनी श्रीराधिका सदा-सर्वदा लीलाविलासरूपी कामरङ्गमें प्रियतम श्रीकृष्णके सहित क्रीड़ा करती हैं, तुम उन श्रीराधाकृष्णके प्रियसे भी प्रिय हो, अतएव तुम कृपापूर्वक मेरे जीवनस्वरूप श्रीराधिकाके दर्शन कराओ।

(६) उसी प्रकार श्रीविशाखाके प्रति प्रार्थना—

क्षणमपि तव सङ्गं न त्यजेदेव देवी
त्वमसि समवयस्त्वान्नर्मभूमिर्यदस्याः।
इति सुमुखि विशाखे दर्शयित्वा मदीशां
मम विरहहतायाः प्राणरक्षां कुरुष्व॥
(विलापकुसुमाञ्जलि ९९वाँ श्लोक)

हे सुमुखि! विशाखे! मदीश्वरी श्रीराधिका तुम्हारी समवयस्का होनेसे तुम उनके लिए (संकोचरहित) क्रीड़ाकौतुकास्पद हो, इसलिए वे एक क्षणके लिए भी तुम्हारा सङ्ग नहीं छोड़तीं। मैं उनके विरहमें बड़ी व्याकुल हूँ, तुम कृपा करके उनके श्रीचरणकमलोंके दर्शन करा कर मेरे प्राणोंकी रक्षा करो।

(७) ललित रतिद गिरिराज गोवर्धन—श्रीरघुनाथदास गोस्वामी श्रीगोवर्धनके निकट वासके लिए प्रार्थना करते हैं—

गिरिनृप! हरिदासश्रेणिवर्येतिनामा-
मृतमिदमुदितं श्रीराधिकावक्त्रचन्द्रात्।
व्रजनवतिलकत्वे क्लृप्त वेदैः स्फुटं मे
निजनिकटनिवासं देहि गोवर्धन त्वम्॥
(श्रीगोवर्धनवासप्रार्थनादशकम् ८वाँ श्लोक)

हे गिरिराज! गोवर्धन! देखो, श्रीमती राधिकाके श्रीमुखचन्द्रसे "हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यः" (श्रीमद्भा॰ १०/२१/१८) इत्यादि रूपसे आपका "आप हरिदासोंकी श्रेणीमें श्रेष्ठ हैं"—यह नामरूपी अमृत प्रकट हुआ है, अतः सब वेदोंने आपको व्रजके अभिनव तिलक रूपसे प्रतिष्ठित किया है, यह बात स्पष्ट है। अतः हे श्रीगोवर्धन! आप मुझे अपने ही निकट निवासस्थान प्रदान करनेकी कृपा करें। तात्पर्य यह है कि अपने श्रीचरणोंमें स्थान देकर मेरे हृदयमें श्रीराधाकृष्ण-युगलके श्रीचरणकमलोंमें रति उत्पन्न करें।

श्रीराधाकुण्ड और श्रीगोवर्धनके दर्शन, स्मरण और महिमा-कीर्त्तनादिसे रागानुगीय प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति होती है। श्रीकृष्णकी चित्-लीलाके जो सब स्थान हैं, वे सभी रतिप्रद हैं, अतएव उन सबका सर्वदा प्रीतिपूर्वक स्मरण करना चाहिये॥९॥

❁❁❁

दशम श्लोक

रतिं गौरीलीले अपि तपति सौन्दर्य किरणैः
शचीलक्ष्मीसत्याः परिभवति सौभाग्यवलनैः।
वशीकारैश्चन्द्रावलिमुखनवीनव्रजसतीः
क्षिपत्याराद्या तां हरिदयितराधां भज मनः ॥१०॥

स्वरूप शक्तिका आश्रय ग्रहण किये बिना शक्तिमत्-तत्त्व श्रीकृष्णकी प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं, इसलिए कहते हैं—हे मेरे मन! तुम अन्यान्य सबमेंसे आसक्तिको त्यागकर श्रीकृष्णकी सर्वाधिक प्रिया श्रीमती राधिकाका भजन करो, जो अपने सौन्दर्यकिरणोंसे रति, गौरी और लीलादेवीको सन्तप्त करती रहती हैं, जो अपने सौभाग्यकी समृद्धिके द्वारा श्रीशची, श्रीलक्ष्मी और श्रीसत्यभामाको भी पराभूत करती हैं एवं श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाले अपने गुणोंके द्वारा श्रीचन्द्रावली आदि व्रजकी नवीन सतियोंका गर्व दूर कर दिया है, वे श्रीराधिका ही श्रीकृष्णकी सर्वाधिक प्रिया हैं।

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) श्रीराधिकाजीके अद्भुत गुणसमूह—श्रीरूप गोस्वामी इस विषयमें कहते हैं—

अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः।
मधुरेयं नववयाश्चलापाङ्गोज्ज्वलस्मिता॥

चारुसौभाग्यरेखाढ्या गन्धोन्मादितमाधवा।
सङ्गीतप्रसराभिज्ञा रम्यवाङ् नर्मपण्डिता॥

विनीता करुणापूर्णा विदग्धा पाटवान्विता।
लज्जाशीला सुमर्यादा धैर्यगाम्भीर्यशालिनी॥

सुविलासा महाभावपरमोत्कर्षतर्षिणी।
गोकुलप्रेमवसतिर्जगच्छ्रेणीलसद्यशाः ॥

गुर्वर्पितगुरुस्नेहा सखीप्रणयितावशा।
कृष्णप्रियावलीमुख्या सन्तताश्रवकेशवा।
बहुना किं गुणास्तस्याः संख्यातीता हरेरिव॥
(उज्ज्वलनीलमणि ४/११-१५)

अब वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाके प्रधान-प्रधान गुणोंका कीर्त्तन करता हूँ। वे मधुरा, नववयस्का, चञ्चल कटाक्षवाली, उज्ज्वल मृदु मधुर हास्यकारिणी, सुन्दर-सौभाग्य-रेखायुक्ता, अपने श्रीअङ्गके सुगन्धसे माधवको उन्मादित करनेवाली, सङ्गीत विद्या विशारद, रम्यवाक्, नर्मपण्डिता अर्थात् हास-परिहासमें कुशला, विनीता, करुणामयी, विदग्धा, सुचतुरा, लज्जाशीला, सुमर्यादा, धैर्यशालिनी, गाम्भीर्यमयी, सुविलासा, महाभावके अतिशय प्राकट्यमें परमव्यग्रा, गोकुलप्रेमकी आश्रयस्थली, निखिल ब्रह्माण्डोंमें यशोराशि विस्तारिणी, गुरुजनोंसे प्राप्त महास्नेहवती, सखीवृन्दके प्रणयकी वशीभूता, कृष्ण प्रियाओंमें प्रधाना और श्रीकेशवको सर्वदा अपने अधीन रखनेवाली—इन गुणोंसे सम्पन्न हैं। अधिक क्या, श्रीकृष्णकी भाँति इनके भी असंख्य गुणसमूह हैं।

महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी।
गोपालोत्तरतापन्यां यद् गान्धर्वेति विश्रुता॥

वे महाभावस्वरूपा हैं। उनके समान गुणवती दूसरी कोई भी नहीं है, गोपालोत्तरतापनीमें वे गान्धर्वा नामसे विख्यात बतलायी गयी हैं। ऋक् परिशिष्टमें भी है—“राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका” अर्थात् श्रीमती राधिकाके साथ माधव एवं श्रीमाधवके साथ श्रीमती राधिका—दोनों ही परस्पर सदा-सर्वदा एक ही साथ

रहते हैं। एकके बिना दूसरे कदापि अकेले नहीं रहते। इसलिए पद्मपुराणमें श्रीदेवर्षि नारदजी कहते हैं—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥

ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसी।
तत्सारभावरूपेयमिति तन्त्रे प्रतिष्ठिता॥

श्रीमती राधिका जिस प्रकार श्रीकृष्णकी सर्वाधिक प्रिया हैं, उसी प्रकार उनका कुण्ड—श्रीराधाकुण्ड भी श्रीकृष्णको उतना ही प्रिय है। सारी प्यारी गोपिकाओंमें भी श्रीमती राधिकाजी ही श्रीकृष्णकी अत्यन्त वल्लभा हैं।

नवगोरोचनागौरीं प्रवरेन्दीवराम्बराम्।
मणिस्तवकविद्योतिवेणीव्यालाङ्गनाफणाम् ॥१॥

उपमानघटामानप्रहारिमुखमण्डलाम्।
नवेन्दुनिन्दिभालोद्यत्कस्तूरीतिलकश्रियम् ॥२॥

भ्रूजितानङ्गकोदण्डां लोलनीलालकावलिम्।
कज्जलोज्ज्वलताराजच्चकोरीचारुलोचनाम् ॥३॥

तिलपुष्पाभनासाग्रविराजद्वरमौक्तिकाम्।
अधरोद्धूतबन्धूकां कुन्दालीबन्धुरद्विजाम्॥४॥

सरत्नस्वर्णराजीवकर्णिकाकृतकर्णिकाम्।
कस्तूरीबिन्दुचिबुकां रत्नग्रैवेयकोज्ज्वलाम्॥५॥

दिव्याङ्गदपरिष्वङ्गलसद्भुजमृणालिकाम्।
वलारिरत्नवलयकलालम्बिकलाविकाम् ॥६॥

रत्नाङ्गुरीयकोल्लासिवराङ्गुलिकराम्बुजाम्।
मनोहरमहाहारविहारिकुचकुड्मलाम् ॥७॥

रोमालिभुजगीमूर्द्धरत्नाभतरलाञ्चिताम् ।
वलित्रयीलताबद्धक्षीणभङ्गुरमध्यमाम् ॥८॥

मणिसारसनाधारविस्फारश्रोणिरोधसम् ।
हेमरम्भामदारम्भस्तम्भनोरुयुगाकृतिम् ॥९॥

जानुद्युतिजितक्षुल्लपीतरत्नसमुद्गकाम् ।
शरन्नीरजनीराज्यमञ्जीरविरणत्पदाम् ॥१०॥

राकेन्दुकोटिसौन्दर्यजैत्रपादनखद्युतिम् ।
अष्टाभिः सात्त्विकैर्भावैराकुलीकृतविग्रहाम् ॥११॥

मुकुन्दाङ्गकृतापाङ्गामनङ्गोर्मितरङ्गिताम् ।
त्वामारब्धप्रियानन्दां वन्दे वृन्दावनेश्वरी ॥१२॥

अयि प्रोद्यन्महाभावमाधुरी विह्वलान्तरे ।
अशेषनायिकावस्थाप्राकट्याद्भुतचेष्टिते ॥१३॥

सर्वमाधुर्यविञ्छोलीनिर्मञ्छितपदाम्बुजे ।
इन्दिरामृग्यसौन्दर्यस्फुरदंघ्रिनखाञ्चले ॥१४॥

गोकुलेन्दुमुखीवृन्दसीमन्तोत्तंसमञ्जरि ।
ललितादिसखीयूथजीवातुस्मितकोरके ॥१५॥

चटुलापाङ्गमाधुर्यबिन्दून्मादितमाधवे ।
तातपादयशःस्तोमकैरवानन्दचन्द्रिके ॥१६॥

अपारकरुणापूरपूरितान्तर्मनोह्रदे ।
प्रसीदास्मिन् जने देवि निजदास्यस्पृहाजुषि ॥१७॥

क्वच्चित्त्वं चाटुपटुना तेन गोष्ठेन्द्रसूनुना ।
प्रार्थ्यमानचलापाङ्गप्रसादाद्द्रक्ष्यसे मया ॥१८॥

त्वां साधु माधवीपुष्पैर्माधवेन कलाविदा ।
प्रसाध्यमानां स्विद्यन्तीं वीजयिष्याम्यहं कदा ॥१९॥

केलिविस्रंसिनो वक्रकेशवृन्दस्य सुन्दरि।
संस्काराय कदा देवि जनमेतं निदेक्ष्यसि॥२०॥

कदा बिम्बोष्ठि ताम्बूलं मया तव मुखाम्बुजे।
अर्प्यमाणं व्रजाधीशसुनूराच्छिद्य भोक्ष्यते॥२१॥

व्रजराजकुमारवल्लभाकुलसीमन्तमणि प्रसीद मे।
परिवारगणस्य ते यथा पदवी मे न दवीयसी भवेत्॥२२॥

करुणां मुहुरर्थये परं तव वृन्दावनचक्रवर्तिनि।
अपि केशिरिपोर्यया भवेत्स चटुप्रार्थनभाजनं जनः॥२३॥

इमं वृन्दावनेश्वर्या जनो यः पठति स्तवम्।
चाटुपुष्पाञ्जलि नाम स स्यादस्याः कृपास्पदम्॥२४॥

(स्तवमाला)

हे वृन्दावनेश्वरि! मैं आपकी वन्दना करता हूँ। आप अभिनव गोरोचनकी भाँति गौराङ्गी हैं, सुन्दर नीलकमलकी तरह आपके नील वस्त्र हैं, आपकी लम्बी वेणीके ऊपरी भागमें मणि-रत्नोंसे खचित कवरी-बन्ध फणवाली काली नागिन जैसी प्रतीत होती है॥१॥ आपका मुखमण्डल पूर्णचन्द्र और पद्म जैसे सभी उपमाके स्थलोंके गर्वको खर्व करता है, नवोदित चन्द्रकलाकी भाँति आपके ललाटपर कस्तूरीका तिलक सुशोभित हो रहा है॥२॥ आपकी टेढ़ी भौहें कामदेवके धनुषका तिरस्कार करती हैं, आप चञ्चल काले घुँघराले केशोंसे सुशोभित हैं, काजलसे सुशोभित आपके नेत्रयुगल युगल-चकोरी जैसे प्रतीत हो रहे है॥३॥ तिल-कुसुम जैसी आपकी प्रफुल्लित नासिकाके अग्रभागमें उत्कृष्ट मुक्ता सुशोभित है, बन्धूक-पुष्पकी भाँति आपके अधर और अनारके सुन्दर चमकीले दानोंकी भाँति आपकी दन्त-पंक्ति सुशोभित हो रही है॥४॥

रत्न-जड़ित स्वर्णपद्मकी कर्णिकायें आपके कर्णभूषण हैं, आपका चिबुक कस्तूरी-बिन्दुसे अत्यन्त सुशोभित है तथा आप

रत्नमय कण्ठहारसे अलंकृत हैं॥५॥ कमल दण्डकी भाँति अतिशय सुन्दर आपकी दोनों भुजाएँ अङ्गद-भूषणसे विभूषित हैं तथा आपकी कलाइयाँ (मणिबन्ध) इन्द्रनीलमणि-निर्मित, सुमधुर ध्वनिविशिष्ट कङ्कण द्वारा सुशोभित हैं॥६॥ आपके करकमलोंकी अङ्गुलियाँ रत्न-जड़ित अँगूठियोंसे सुशोभित हो रही हैं, आपके स्तनयुगल मनोहर महाहारोंसे विभूषित हैं॥७॥ आपके हृदयपर विराजित हारके बीचकी मणि, रोमावलीरूप भुजङ्गिनीके मस्तकके रत्नकी भाँति प्रतीत होती है आपका अतिशय क्षीण और कुचोंके भारसे झुका हुआ मध्य भाग (उदर) त्रिवलीरूप लता द्वारा मानो वेष्टित हो रहा है॥८॥ आपका विशाल कटिप्रदेश मणिमय किङ्किणियोंसे परिशोभित है, आपके उरु-युगल स्वर्ण कदलीके गर्वको चूर्ण करते हैं॥९॥ आपके सुन्दर दोनों घुटनोंकी शोभा, पीतवर्णके रत्नोंसे निर्मित समुद्गक (ढक्कनदार पिटारी) की शोभाका तिरस्कार करती है और सुन्दर और रुन्-झुन् बजते हुए नूपुरोंसे युक्त आपके श्रीचरणयुगल शरत्-कालके प्रफुल्लित लाल-लाल पद्म-पुष्पोंके द्वारा नीराजित हो रहे हैं॥१०॥ आपके श्रीचरणकमलोंकी नख-छटा करोड़ों पूर्णचन्द्रोंके सौन्दर्यको भी मात कर रही है। स्तम्भ, स्वेद आदि अष्टसात्त्विकभावोंसे विभूषित, श्रीकृष्णके प्रति कटाक्षके सञ्चालन द्वारा आपका अनङ्ग-तरङ्ग उच्छलित हो रहा है, तदन्तर श्रीकृष्णके साथ मिलित होनेपर अपार आनन्दका उपभोग करती हैं, अतएव हे वृन्दावनेश्वरि! ऐसी गुणवती आपकी वन्दना करता हूँ॥११-१२॥

हे श्रीमति! समुदित महाभाव-माधुरी द्वारा आपका अन्तःकरण विवश हो रहा है, आपमें अशेष प्रकारकी नायिकाओंके लक्षण विद्यमान रहनेसे आपकी भाव-भङ्गिमाओंके दर्शनसे सभी आश्चर्यचकित हो जाते हैं॥१३॥ सब प्रकारकी नायिकाओंमें जो माधुर्य आदि सारे गुण हैं, वे सभी गुण आपके श्रीचरणकमलोंका निर्मञ्छन करते हैं। लक्ष्मीके लिए भी प्रार्थनीय सौन्दर्य आपके श्रीचरणकमलोंके नख-प्रान्तमें विराजित है॥१४॥ आप गोकुलके समस्त रमणी

समाजकी शिरोभूषण कुसुममञ्जरीस्वरूपा हैं, आपकी मन्द मधुर हास्य-कलिका श्रीललिता आदि सखियोंकी जीवनौषधिस्वरूप है॥१५॥ आप अपने चञ्चल अपाङ्ग-भङ्गीरूप माधुर्य-बिन्दु द्वारा श्रीकृष्णको उन्मादित करती हैं, आप अपने पिताके कीर्त्तिकलापरूप पुष्पको आह्लादित करनेवाली चन्द्रिकास्वरूप हैं॥१६॥

आपका अन्तःकरणरूप अगाध असीम सरोवर अथाह करुणारूप जलराशिसे परिपूर्ण है। हे देवि! आपकी दासीपदकी अभिलाषी इस प्रणत जनके प्रति आप प्रसन्न हों॥१७॥ हे देवि! आपके मानके प्रशमित होनेपर चाटुपूर्ण वचन-परिपाटीमें पटु व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण आपके साथ मिलनकी प्रार्थना करनेपर आप चञ्चल अपाङ्ग द्वारा उनके प्रति दृष्टिपातकर पुलकित हो रही हों, आपके ऐसे भावका मैं कब दर्शन कर सकूँगा?॥१८॥ हे देवि! शिल्प-कलामें निपुण श्रीकृष्ण माधवी पुष्पोंसे आपका शृङ्गार कर रहे हों और उस समय उनके करकमलोंके स्पर्श होनेसे श्रीअङ्गोंमें सात्त्विकभावोंके उदय होनेपर जब आप पसीनेसे तर हो जायेंगी, उस समय तालवृन्त द्वारा आपके श्रीअङ्गोंपर धीरे-धीरे कब वीजन करूँगा?॥१९॥ हे देवि! हे सुन्दरि! श्रीकृष्णके साथ विहारके अन्तमें आपका केश-पाश अस्त-व्यस्त होनेपर उनका पुनः संस्कार करनेके लिए इस आश्रित जनको कब आदेश प्रदान करेंगी?॥२०॥

हे बिम्बोष्ठि! मैं आपके श्रीमुखकमलमें ताम्बूल अर्पण करनेपर श्रीकृष्ण उसे आपके मुखसे निकालकर स्वयं अपने मुखमें डाल लेंगे—आप युगलके ऐसे मनोरम भावका दर्शन मैं कब पाऊँगा?॥२१॥ हे श्रीमति! आप व्रजेन्द्रनन्दनकी निखिल प्रेयसियोंकी शिरोभूषण हैं, अतएव आप मेरे प्रति सुप्रसन्न होवें और शीघ्रसे शीघ्र आपके परिवारगणमें मेरी भी गणना हो—ऐसी अनुकम्पा कीजिये॥२२॥ हे वृन्दावन-चक्रवर्तिनि! मैं बारम्बार आपके श्रीचरणोंमें कृपाकी भीख माँगती हूँ कि आप मुझे अपनी पाल्यदासी बना लें। आपके मानिनी होनेपर जब श्रीकृष्ण आपकी

प्रिय दासी जानकर मेरे समीप आपसे मिलानेके कितने ही प्रकारसे चाटुकारी भरी बातें करेंगे, उस समय मैं उनका हाथ पकड़ कर आपके समीप लाऊँगी। अहो स्वामिनि! आपकी मेरे ऊपर ऐसी कृपा कब होगी?॥२३॥ जो सौभाग्यवान व्यक्ति वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाके इस 'चाटुपुष्पाञ्जलिः' नामक स्तवका श्रद्धापूर्वक पाठ करते हैं, वे शीघ्र ही उन श्रीमती राधिकाके कृपापात्र हो जाते हैं॥२४॥

इस प्रकारके स्तव-स्तोत्रों तथा सेवा-परिचर्याके द्वारा श्रीमती राधिकाजीका भजन करना चाहिये। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजीने तो यहाँ तक कहा है—

लक्ष्मीर्यदंघ्रिकमलस्य नखाञ्चलस्य
सौन्दर्यविन्दुमपि नार्हति लब्धुमीशे।
सा त्वं विधास्यसि न चेन्मम नेत्रदानं
किं जीवितेन मम दुःखदवाग्निदेन॥

आशाभरैरमृतसिन्धुमयैः कथञ्चित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे
प्राणैर्व्रजेन च वरोरु बकारिणापि॥
(विलापकुसुमाञ्जलि १०१-१०२ श्लोक)

हे प्राणेश्वरि! श्रीराधिके! श्रीलक्ष्मीदेवी भी जिनके श्रीचरणकमलोंके नखाञ्चलके सौन्दर्य-बिन्दुको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हैं, ऐसे आप यदि मुझे अपनी लीला आदिके दर्शनोंके योग्य चक्षु प्रदान न करें, तब इस दुःखरूप दावाग्निमें जलते हुए जीवनसे मुझे क्या लाभ है? हे वरोरु! मैंने अब तक आपकी अप्राकृत लीला आदिके दर्शन और आपकी सेवा-परिचर्या रूप अमृतसागरकी प्राप्तिकी आशासे निश्चय ही अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन धारण किया, किन्तु अब भी यदि आप मुझपर कृपा न करें, तो इस

प्राण-धारणसे, व्रजवाससे और अधिक क्या कहूँ, श्रीकृष्णसे भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

सौभाग्यवश भगवान् या भक्तकी अहैतुकी कृपासे यदि किसी व्यक्तिकी व्रजभावमें रति उदित हो जाये, तो उसे रागानुगीय श्रीगुरुदेवसे अपना सम्बन्ध जानकर अपने योग्य सेवा-साधनके लिए सर्वप्रथम उन्हीं गुरुदेवके स्वरूपगत-तत्त्व मञ्जरीका पदाश्रयकर भजन-साधनमें जी-जानसे जुट जाना चाहिये। भजन-साधन करते-करते मञ्जरीकी कृपा होनेपर सखीके निकट सेवा प्राप्त होती है। पुनः सखीकी परिचर्या करते-करते उनकी कृपासे वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाजीका साक्षात् दर्शन मिलता है। फिर उनकी कृपा होनेपर युगल-लीलामें सेवा प्राप्त होती है। सब कुछ निष्कपट दीनता, लालसा और अनन्यमयतासे ही सिद्ध होता है॥१०॥

एकादश श्लोक

समं श्रीरूपेण स्मरविवशराधागिरिभृतो–
र्व्रजे साक्षात्सेवालभनविधये तद्गणयुजोः।
तदिज्याख्याध्यानश्रवणनतिपञ्चामृतमिदं
धयन्नीत्या गोवर्धनमनुदिनं त्वं भज मनः॥११॥

अब निगूढ़–भजनके साधनाङ्गोंको बतला रहे हैं। हे मेरे प्रिय मन! तुम व्रजमें अपने गणों या परिकरोंके सहित स्मरविलासपरायण श्रीश्रीराधा–गिरिधारीजीकी साक्षात् सेवा प्राप्तिके लिए उनकी पूजा, उनके नाम–रूप–गुण–लीलादिका श्रवण और उन्हें प्रणाम करना— इस पञ्चामृतको श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा प्रदर्शित परिपाटीके साथ पान करते हुए भक्तिकी रीतिसे प्रतिदिन श्रीगोवर्धनका सेवन करो॥११॥

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) स्वगणके सहित—श्रीदाम, सुबल आदिके द्वारा परिवेष्टित श्रीकृष्ण तथा श्रीललिता–विशाखा आदिसे परिवेष्टित श्रीराधिकाजी।

(२) स्मर–विलासपरायण—दास्य, सख्य और वात्सल्य रससे शृङ्गाररसको अधिक प्रिय जानकर उसमें अनुरक्त।

(३) व्रजमें साक्षात् सेवा प्राप्ति—साधनके समय जो सेवा होती है, वह साक्षात् सेवाका अनुकरण है। सिद्धिके समय पहले दूरगत सेवा प्राप्ति होती है। क्रमशः मञ्जरीके अनुगत होकर दूरवर्ती सेवा करते–करते सखियोंकी निकटवर्ती सेवा मिलती है। उसके बाद फिर श्रीश्रीराधागोविन्दजीकी साक्षात् सेवा प्राप्त होती है। सेवा

अनेक प्रकारकी होती है, जैसे कुञ्ज-मार्जन, शय्या सजाना, जल लाना, माला-हार गूँथना, ताम्बुलकी बीड़ी प्रस्तुत करना, कर्पूर दान आदि अनन्त सेवाएँ हैं। अगणित परिचारिकाएँ एक-एक सेवामें नियुक्त रहती हैं। श्रीराधागोविन्दकी साक्षात् सेवा जीवके चित्-देह अर्थात् नित्यसिद्ध देहकी प्राप्ति होनेपर ही सम्भव है। बद्ध जीव अपने मायिक जड़शरीर या सूक्ष्मशरीरसे साक्षात् सेवा नहीं कर सकता। साक्षात् सेवामें क्षण-क्षणमें मधुररसगत निगूढ़ भावोंके कारण नित्य-नूतन रस और आनन्दकी अनुभूति होती है। उस समय सेवा-सुखके अतिरिक्त स्वसुख भोगकी लालसाका गन्धमात्र भी नहीं होता। इसलिए उस स्थितिमें कभी भी किसी प्रकारका दुःख हृदयको स्पर्श नहीं कर पाता। मधुररसके विप्रलम्भ (वियोग) भावमें जो दुःख जैसा व्यापार दिखलायी पड़ता है, वह भी परमानन्दका ही रूपान्तरमात्र है। वहाँ जड़शरीरगत दुःखकी तनिक भी सम्भावना नहीं है।

(४) श्रीरूपके साथ—अर्थात् मधुररसके आचार्य श्रीरूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु और श्रीउज्ज्वलनीलमणि नामक ग्रन्थोंमें रागानुगीय मधुररसके साधकोंके लिए जो रीति-नीति प्रदर्शित की है, उसका अवलम्बन करके मूल श्लोकमें लिखित पञ्चामृतका पान करना चाहिये। वह रीति-नीति इस प्रकार है—

श्रद्धा विशेषतः प्रीतिः श्रीमूर्त्तेरङ्‌घ्रिसेवने।
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह॥

सजातीयाशये स्निग्धे साधौ संगः स्वतो वरे।
नामसङ्कीर्त्तनं श्रीमन्मथुरामण्डले स्थितिः॥

अङ्गानां पञ्चकस्यास्य पूर्वं विलिखितस्य च।
निखिलश्रैष्ठ्यबोधाय पुनरप्यत्र कीर्त्तनम्॥

(भ॰ र॰ सि॰ १/२/९०-९३)

अर्थात् (१) श्रीमूर्त्ति-चरणसेवामें प्रीति, (२) रसिकोंके साथ श्रीमद्भागवतके अर्थोंका आस्वादन करना, (३) स्वजातीय भाववाले, स्निग्ध और अपनेसे श्रेष्ठ भक्तोंका सङ्ग करना, (४) श्रीनामसङ्कीर्त्तन तथा (५) श्रीमथुरा (व्रज) मण्डलमें वास करना—इन पाँच अङ्गोंका पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, फिर भी इनकी सर्वश्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेके लिए पुनः इनका उल्लेख किया गया है।

(५) इज्या—श्रीविग्रहका सेवन अर्थात् अर्चन करना। श्रीहरिवासर (एकादशी और विशेष द्वादशी) का सम्मान करना। तुलसीमाला और तिलक धारण करना, चरणामृत और महाप्रसाद सेवन, व्रत-आदि तथा तुलसी-सेवा आदि अङ्ग इसके अन्तर्गत हैं।

(६) आख्या—भक्तिशास्त्र पाठ, भक्तमण्डलीमें हरिकथा कीर्त्तन और श्रवण, श्रीनाम-रूप-गुण-लीलादिका कीर्त्तन—ये 'आख्या' कहलाते हैं।

(७) ध्यान—स्मरणके अन्तर्गत कार्य-विशेषको ध्यान कहते हैं। यहाँ स्मरणको ही ध्यान कहा गया है। जैसे श्रीजीव गोस्वामी कहते हैं—

स्मरणं मनसानुसन्धानम्। अथ पूर्ववत् क्रमसोपानरीत्या सुख-लभ्यंगुणपरिकरसेवालीलास्मरणञ्चानुसन्धेयम्। तदिदं स्मरणं पञ्चविधम्। यत्किञ्चिदनुसन्धानं स्मरणम्। सर्वतश्चित्तमाकृष्य सामान्याकारेण मनोधारणं धारणा। विशेषतो रूपादिचिन्ततं ध्यानम्। अमृतधारावदविच्छिन्नं तद् ध्रुवानुस्मृतिः। ध्येयमात्रस्फुरणं समाधिरति।

(भक्तिसन्दर्भ २७८ संख्या)

अर्थात् मनसे अनुसन्धान करनेका नाम स्मरण है। अनन्तर पहलेकी तरह क्रम-सोपानकी रीतिके अनुसार अर्थात् पहले नाम-स्मरण, फिर रूप-स्मरण, तदनन्तर गुण-स्मरण—इस क्रमके अनुसार सहज और सुख-लभ्य श्रीहरिके गुण, परिकर, उनकी

सेवा और लीलाका स्मरण करना चाहिये। यह स्मरण पाँच प्रकारका होता है। जैसे—(१) यत् किञ्चित् श्रीहरिके नाम, रूप आदिके अनुसन्धानका नाम स्मरण है। (२) सब विषयोंसे चित्तको हटाकर साधारण रूपमें श्रीहरिके नाम-रूप आदिमें चित्तको लगाने—धारण करनेका नाम धारणा है। (३) विशेष रूपसे नाम-रूपादिके चिन्तनको ध्यान कहते हैं। (४) अमृतधाराकी भाँति अविच्छिन्न रूपसे स्मरणको ध्रुवानुस्मृति कहते हैं। और (५) जिस ध्यानमें केवलमात्र ध्येय वस्तुकी ही स्फूर्ति हो, उसे समाधि कहते हैं।

(८) श्रवण—शुद्ध भक्तोंके मुखसे श्रीभगवन्नाम-रूप-गुण-लीला आदिके श्रवणको 'श्रवण' कहते हैं। प्रतिदिन शामको सत्सङ्गमें श्रीमद्भागवत और दूसरे भक्तिके ग्रन्थोंके श्रवण आदिकी व्यवस्था भी इसीके अन्तर्गत समझनी चाहिये।

(९) नति—श्रीविग्रहके समीप अथवा भगवल्लीला-स्थल या भगवान्के स्मरणोद्दीपक स्थानोंमें दर्शन करते समय साष्टाङ्गप्रणाम करना ही 'नति' कहलाता है।

(१०) गोवर्धनका भजन—श्रीरघुनाथदास गोस्वामीने यह बात अपनेको और सभीको लक्ष्य करके कहा है। स्वयंभगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीदास गोस्वामीको श्रीगोवर्धन शिला प्रदान की थी। इसका वर्णन स्वयं श्रीदास गोस्वामीने किया है—

महासम्पद्दारादपि पतितमुद्धृत्य कृपया
स्वरूपे यः स्वीये कुजनमपि मां न्यस्य मुदितः।
उरोगुञ्जाहारं प्रियमपि च गोवर्धनशिलां
ददौ मे गौराङ्गो हृदय उदयन् मां मदयति॥
(श्रीगौराङ्ग-स्तवकल्पतरुः ११ श्लोक)

मैं घोर पतित और अत्यन्त घृणित होनेपर भी जिन्होंने अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा विशाल वैभव और भार्या आदिसे

मेरा उद्धार किया और मुझे अपने प्रिय श्रीस्वरूप दामोदरजीके हाथोंमें सौंपकर जो बड़े प्रसन्न हुए थे तथा मुझे अपना प्रियपात्र जानकर गुञ्जाहार और श्रीगोवर्धन शिला प्रदान की, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आनन्दित करें।

श्रीगोवर्धन शिला साक्षात् भगवत्-वस्तु हैं। श्रीदास गोस्वामी श्रीगोवर्धनके समीप (श्रीराधाकुण्डमें) निवास करते थे। कभी भी दूसरी जगह नहीं जाते थे। उसी प्रकार मैं गोवर्धनवास कदापि छोड़ नहीं सकता—ऐसी दृढ़ निष्ठाका होना भी श्रीगोवर्धनका भजन है। साधारण साधकोंके लिए भी श्रीगोवर्धन भजनके दो अर्थ हैं—एक यह कि श्रीगोवर्धन शिलाको सेवनीय श्रीविग्रह जानकर पूर्वोक्त रीतिसे उनकी सेवा-पूजा करनी चाहिये। दूसरा अर्थ यह है कि श्रीगोवर्धन नामक लीलास्थल और उपलक्षण द्वारा सारे व्रजमण्डलमें वासकर श्रीराधाकृष्ण युगलकी आराधना करनी चाहिये। इसके द्वारा श्रीरूप गोस्वामी द्वारा कथित "मथुरामण्डलमें वास करना भक्तिका एक प्रधान अङ्ग है", उसीको ही यहाँ दूसरे शब्दोंमें प्रकट किया गया है।

(११) नीतिसे—'नीति' शब्दसे यहाँ केवल विधिमार्गको नहीं समझना चाहिये। जो वैधीभक्तिके अधिकारी हैं, वे श्रीरूप गोस्वामी द्वारा प्रदर्शित विषयोंके अनुसार भजन करेंगे। जो रागानुगाभक्तिके अधिकारी हैं, वे श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा प्रदर्शित रागनीतिका अवलम्बन करते हुए भजन करेंगे॥११॥

द्वादश श्लोक

मनःशिक्षादैकादशकवरमेतन्मधुरया
गिरा गायत्युच्चैः समधिगतसर्वाथतति यः।
सयूथः श्रीरूपानुग इह भवन् गोकुलवने
जनो राधाकृष्णातुलभजनरत्नं स लभते॥१२॥

इस प्रकार अपने मनको शिक्षा देकर, अन्य भक्तोंको भी इस 'मनःशिक्षा' स्तोत्रके पाठमें प्रवृत्त करनेके लिए प्रोत्साहित करते हैं—

जो व्यक्ति सयूथ श्रीरूपानुग होकर गोकुलवनमें अर्थात् श्रीव्रजमण्डलमें श्रीगोवर्धनके सन्निकट वासकर मनको शिक्षा देनेवाले अति उत्तम इन ग्यारह श्लोकोंका मधुर वाणीसे उच्च स्वरमें अर्थको भली-भाँति समझकर गायन करते हैं, वे श्रीराधा-कृष्णके अतुलनीय भजनरूप रत्नको प्राप्त कर लेते हैं॥१२॥

श्रीभजनदर्पणदिग्दर्शिनीवृत्ति

(१) सयूथ—स्वजातीय भाववाले सुस्निग्ध और अपनेसे श्रेष्ठ रूपानुग वैष्णवोंके अनुगत रहना ही 'सयूथ' कहलाता है। ललिता आदि सखियाँ स्वतन्त्र नायिका और यूथेश्वरी होते हुए भी जैसे श्रीमती राधिकाके अनुगत रहती हैं, वैसे ही भागवतोत्तमगण अनेकों शिष्योंके गुरु होनेपर भी श्रीरूप गोस्वामीके अनुगत होते हैं। श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें कहा गया है—

यूथाधिपत्वेऽप्यौचित्यं दधाना ललितादयः।
स्वेष्टराधादिभावस्य लोभात्सख्य-रुचिं दधुः॥
(उज्ज्वलनीलमणि ३/६१)

ललिता आदि प्रधाना सखियाँ यूथेश्वरी होनेकी योग्यता रखती हुईं भी स्वाभीष्ट श्रीमती राधिकाकी प्रीति उत्पादनके लोभसे अनुगामिनी सखीभावकी ही एकमात्र अभिलाषा रखती हैं। स्वतन्त्र यूथेश्वरी नायिकाभावको पसन्द नहीं करतीं।

(२) रूपानुग—श्रीरूप गोस्वामीने श्रीमन् महाप्रभुके आदेश-निर्देशसे जिस रसतत्त्वकी शिक्षा दी है तथा स्वयं जिस प्रकारसे उन शिक्षाओंके अनुरूप ही भजन करके जगत्में जो आदर्श व्रज-भजन-रीति स्थापित की है और श्रीजीव गोस्वामी, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी आदि रसिकाचार्योंने जिनका अनुसरण किया है, वैसी भजन परिपाटीका अनुसरण करना ही श्रीरूपानुग भजन है।

(३) गोकुलवने—श्रीमथुरामण्डलके अर्थात् श्रीव्रजमण्डलके किसी भी रम्य लीलास्थलीमें। श्रीरूप गोस्वामीने श्रीमथुरामण्डलका माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा है—

मथुरा स्तवः

मुक्तेर्गोविन्दभक्तेर्वितरणचतुरं सच्चिदानन्दरूपं
यस्यां विद्योति विद्यायुगलमुदयते तारकं पारकञ्च।
कृष्णस्योत्पत्तिलीलाखनिरखिल जगन्मौलिरत्नस्य सा ते
वैकुण्ठाद् या प्रतिष्ठा प्रथयतु मथुरा मङ्गलानां कलापम्॥१॥

कोटीन्दुस्पष्टकान्ती रभसयुतभवक्लेशयोधैरयोध्या
मायावित्रासिवासा मुनिहृदयमुषो दिव्यलीलाः स्रवन्ती।
साशीः काशीशमुख्यामरपतिभिरलं प्रार्थितद्वाराकार्या
वैकुण्ठोद्गीतकीर्त्तिर्दिशतु मधुपुरी प्रेमभक्तिश्रियं वः॥२॥

बीजं मुक्तितरोरनर्थपटलीनिस्तारकं तारकं
धाम प्रेमरसस्य वाञ्छितधुरा संपारकं पारकम्।
एतद्यत्र निवासिनामुदयते चिच्छक्तिवृत्तिद्वयं
मथ्नातु व्यसनानि माथुरपुरी सा वः श्रियञ्च क्रियात्॥३॥

अद्यावन्ति! पतद्ग्रहं कुरु करे माये! शनैर्वीजय-
च्छत्रं काञ्चि! गृहाण काशि! पुरतः पादूयुगं धारय।
नायोध्ये! भज सम्भ्रमं स्तुतिकथां नोद्गारय द्वारके!
देवीयं भवतीषु हन्त मथुरा दृष्टिप्रसादं दधे॥४॥
(स्तवमाला)

जो श्रीगोविन्दके चरणकमलोंमें भक्तिरूपी मुक्तिका वितरण करनेमें परम निपुण हैं, जो भवसिन्धुमें तारनेवाली तथा कृष्णप्रेम प्रदान करनेवाली तारक और पारक दोनों विद्याओंसे परिशोभित हैं एवं निखिल जगन्मण्डलके शिरोमणिस्वरूप श्रीकृष्णकी बाल्यादि लीलाओंके स्थान हैं, वे वैकुण्ठकी भी आदरणीया श्रीमथुरापुरी तुम्हारे निखिल प्रकारके मङ्गलोंका विधान करें॥१॥ जिनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंकी कान्तिसे भी बढ़कर है, अत्यन्त वेगवान् संसारके अविद्या आदि पञ्चक्लेशरूप प्रबल योद्धा भी जिनको पराजित करनेमें असमर्थ हैं, अर्थात् जहाँ वास करनेसे भव-यन्त्रणासे सहज ही मुक्त हुआ जा सकता है, जिस पुरीमें वास करनेके माहात्म्यसे मायावी देवगण भी भयभीत रहते हैं, शुक-शौनक आदि मुनियोंके भी मनको हरण करनेवाली कृष्णलीलाएँ जहाँ नित्यसिद्ध हैं, जो उपासकोंकी सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हैं, शिवादि देवगण भी जिस पुरीमें प्रहरीका कार्य करनेके लिए लालायित रहते हैं, श्रीवराहदेवने भी जिनकी कीर्त्तिका गान किया है, वे श्रीमथुरापुरी तुमलोगोंको प्रेमभक्ति प्रदान करें॥२॥ जो मुक्तिरूप वृक्षके बीज-स्वरूप तथा अनर्थोंकी परम्परासे निस्तार करनेवाली हैं, जो सब प्रकारके अमङ्गलोंसे रक्षा करनेवाली तथा प्रेमरसके आधारस्वरूप एवं कृष्ण-वश्यतारूप कामनाको पूर्ण करनेवाली हैं, श्रीकृष्णकी सच्चिदानन्दमय चित्-शक्ति युगल जहाँ निरन्तर प्रकाशित है, वही श्रीमथुरापुरी तुम्हारे लिङ्गशरीर (सूक्ष्मशरीर) तक पापराशिका ध्वंसकर प्रेमभक्तिका विधान करें॥३॥ हे अवन्तिके (उज्जैनी) ! आज तुम हाथमें

पीकदान ग्रहण करो, हे मायापुरी (हरिद्वार) ! तुम चामर व्यजन करो, हे काञ्ची! तुम छत्र धारण करो, हे काशी! तुम दोनों हाथोंसे पादुका लेकर आगे रखो, हे अयोध्या! तुम और भयभीत न होना, हे द्वारके! तुम आज स्तुति मत करना, क्योंकि आज महाराज श्रीकृष्णकी राजमहिषी श्रीमथुरादेवी तुम किङ्करियोंके प्रति प्रसन्न हो गयी हैं॥४॥

श्रीश्रीवृन्दावनाष्टकम्

मुकुन्दमुरलीरवश्रवणफुल्लहृद्वल्लवी-
कदम्बककरम्बितप्रतिकदम्बकुञ्जान्तरा ।
कलिन्दगिरिनन्दिनीकमलकन्दलान्दोलिना
सुगन्धिरनिलेन मे शरणमस्तु वृन्दाटवी॥१॥

विकुण्ठपुरसंश्रयाद्विपिनतोऽपि निःश्रेयसात्
सहस्रगुणितां श्रियं प्रदुहती रसश्रेयसीम्।
चतुर्मुखमुखैरपि स्पृहिततार्णदेहोद्भवा
जगद्गुरुभिरग्रिमैः शरणमस्तु वृन्दाटवी॥२॥

अनारतविकस्वरव्रततिपुञ्जपुष्पावली-
विसारिवरसौरभोद्गमरमाचमत्कारिणी ।
अमन्दमकरन्दभृद्विटपिवृन्दवन्दीकृत-
द्विरेफकुलवन्दिता शरणमस्तु वृन्दाटवी॥३॥

क्षणद्युतिघनश्रियोर्व्रजनवीनयूनोः पदैः
सुवल्गुभिरलङ्कृता ललितलक्ष्मलक्ष्मीभरैः।
तयोर्नखरमण्डलीशिखरकेलिचर्योचितै-
र्वृताकिसलयाङ्कुरैः शरणमस्तु वृन्दाटवी॥४॥

व्रजेन्द्रसखनन्दिनीशुभतराधिकारक्रिया-
प्रभावजसुखोत्सवस्फुरितजङ्गमस्थावरा ।

प्रलम्बदमनानुजध्वनितवंशिकाकाकली–
रसज्ञमृगमण्डला शरणमस्तु वृन्दाटवी॥५॥

अमन्दमुदिरार्बुदाभ्यधिकमाधुरीमेदुर–
व्रजेन्द्रसुतवीक्षणोन्नटितनीलकण्ठोत्करा ।
दिनेशसुहृदात्मजाकृतनिजाभिमानोल्लस–
ल्लताखगमृगाङ्गना शरणमस्तु वृन्दाटवी॥६॥

अगण्यगुणनागरीगणगरिष्ठगान्धर्विका–
मनोजरणचातुरीपिशुनकुञ्जपुष्पोज्ज्वला ।
जगत्रयकलागुरोर्ललितलास्यवल्गत्पद–
प्रयोगविधिसाक्षिणी शरणमस्तु वृन्दाटवी॥७॥

वरिष्ठहरिदासतापदसमृद्धगोवर्द्धना
मधूद्वहवधूचमत्कृतिनिवासरासस्थला ।
अगूढगहनश्रियो मधुरिमव्रजेनोज्ज्वला
व्रजस्य सहजेन मे शरणमस्तु वृन्दाटवी॥८॥

इदं निखिलनिष्कुटावलिवरिष्ठवृन्दाटवी–
गुणस्मरणकारि यः पठति सुष्ठु पद्याष्टकम्।
वसन् व्यसनमुक्तधीरनिशमत्र सद्वासनः
स पीतवसने वशी रतिमवाप्य विक्रीडति॥९॥

(स्तवमाला)

श्रीकृष्णकी मुरलीध्वनिको सुनकर अतिशय प्रफुल्लित चित्तवाली गोपिकाओंके द्वारा जिनके कदम्ब आदि कुञ्जें भरी हुई हैं और कलिन्द–गिरिनन्दिनी यमुनादेवीके कमल पुष्पोंके सञ्चालक समीर द्वारा जो अत्यन्त सुगन्धित हो रहे हैं, वे श्रीवृन्दावन मेरे आश्रय स्थल हों॥१॥ जो परव्योम वैकुण्ठ स्थित मोक्षसे भी उत्कृष्ट अतएव हजारोंगुण अधिक कल्याणकारी हैं अर्थात् दास्य, सख्य, वात्सल्य रसात्मिका सम्पत्ति प्रदान करनेवाले हैं, इसलिए जगद्गुरु

चतुर्मुख ब्रह्मा भी जहाँ तृण-गुल्म आदि हीन योनियोंमें भी जन्म प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं, वे श्रीवृन्दावन मेरे आश्रय स्थल हों॥२॥ जो सदा-सर्वदा अपनी पुष्पित लताश्रेणियोंके दूरगामी सौरभ द्वारा श्रीलक्ष्मीदेवीको भी विस्मित कर रहे हैं तथा निरतिशय पुष्परसकी वर्षा करनेवाले वृक्षोंपर भ्रमण करनेवाले भौरोंके समूह जिनकी वन्दना करते हैं, वे श्रीवृन्दावन मेरे आश्रय स्थल हों॥३॥ जिनका सारा अङ्ग क्रमशः सौदामिनी और जलधरकी कान्तिवाले, वृन्दावनके नित्यनवीन श्रीराधागोविन्द-युगलके अति मनोहर और ललित वज्र-अङ्कुश आदि चिह्नोंसे चिह्नित चरणपंक्तियों द्वारा अंकित हैं, तथा उन्हीं श्रीश्रीराधाकृष्णकी नख-श्रेणीके अनुकारी किशलयों और अङ्कुरोंके द्वारा जो सदैव परिपूर्ण रहते हैं, वे श्रीवृन्दावन मेरे आश्रय स्थल हों॥४॥ श्रीनन्दराजके प्रिय बन्धु श्रीवृषभानुराजकी पुत्री श्रीमती राधिकाकी अनुमतिसे आनन्दोत्सवकी वृद्धिके लिए वृन्दा सखी जहाँ पर चर-अचर दोनों प्रकारके प्राणियोंको उल्लसित रखती हैं और जहाँपर यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रलम्बारि बलदेवजीके छोटे भैया श्रीकृष्णकी वंशीकी मधुर-ध्वनिसे रसज्ञ मृगोंके झुण्ड-के-झुण्ड विचरण करते हैं, वे श्रीवृन्दावन मेरे आश्रय स्थल हों॥५॥ जहाँपर श्रीकृष्णकी नवजलधर जैसी अङ्गकान्तिके दर्शनोंसे मत्त-मयूर कौतुहलपूर्वक नृत्य करते हैं, जिनके प्रति सूर्य-सुहृद् श्रीवृषभानु महाराजकी आत्मजा श्रीराधिका 'यह मेरा वृन्दावन' ऐसा ममत्वाभिमान रखती हैं, जहाँ (श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाका स्त्रीराज्य होनेके कारण) लताएँ, मृगियाँ तथा मयूरी-कोकिला आदि स्त्री-पक्षियाँ अत्यधिक उल्लसित रहती हैं, वे श्रीवृन्दावन ही मेरे आश्रय स्थल हों॥६॥ जिनके दिव्य एवं परम सुशोभित कुञ्जसमूह अगणित गुण-ग्राम सम्पन्ना श्रीमती राधिकाकी कामयुद्ध चातुरीको सूचित करते हैं और जो निखिल कलाकौशलमें अतिशय निपुण श्रीकृष्णकी नृत्यकलामें मधुर पद-सञ्चालनके साक्षीस्वरूप हैं, वे

श्रीवृन्दावन ही मेरे आश्रय स्थल हों॥७॥ अतिशय दुर्लभ 'हरिदास' की श्रेष्ठ पदवी (गोपियोंके द्वारा) प्राप्तकर श्रीगिरिराज गोवर्धन जहाँ नित्य विराजित हैं, मधुसूदनकी वधुओं अर्थात् गोपाङ्गनाओंके लिए अथवा श्रीरुक्मिणी और सत्यभामा आदि राजमहिषियोंके लिए परम चमत्कारकारी श्रीरासमण्डलकी जहाँ स्थिति है, जो पुष्पित, पल्लवित और सुरभित वन श्रेणियोंसे परिवेष्टित होकर माधुरी-राशिसे उज्ज्वल कान्तिको धारण कर रहे हैं, वे वृन्दावन स्वभावतः मेरे एकमात्र आश्रयके स्थल होंवें॥८॥ जो जितेन्द्रिय, निष्पाप और शुद्धाभक्तिके अनुशीलनमें निरत व्यक्ति, वृन्दावनमें वास करते हुए, निखिल वनोंमें श्रेष्ठतम श्रीवृन्दावनकी गुणावलियोंका स्मरण करानेवाले इस पद्याष्टकका प्रीतिपूर्वक पाठ करते हैं, वे श्रीमती राधिकाके सहित पीताम्बरधारी श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंमें रति लाभकर सुखपूर्वक विहार करते हैं॥९॥

(४) मनःशिक्षाद—भजनविलासी व्यक्तिके मनको शिक्षा देनेवाले।

(५) वरम् (अति उत्तम)—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपासे श्रीस्वरूप गोस्वामी और श्रीरूप गोस्वामी द्वारा प्रकटित अतिशय गोपनीय उपदेशपूर्ण इन पद्योंका।

(६) मधुरया गिरा उच्चैः—ताल और लयके सहित दूसरे श्रद्धालु साधकोंके साथ मिलकर अथवा अकेले ही द्रवात्मक कातरतापूर्ण उच्च स्वरसे।

(७) समधिगत—इन ग्यारह श्लोकोंके गूढ़ अर्थोंको भलीभाँति समझकर (पाठ करते हैं)।

येषा सरागभजने व्रजराजसूनोः
श्रीरूपशिक्षितमतानुगमनानुरागः ।
यत्नेन ते भजनदर्पणनाम भाष्यं
शिक्षादशलोकसहितं प्रपठन्तु भक्त्या॥

जिन्हें रसाचार्य श्रीरूप गोस्वामीकी शिक्षाओंके अनुरूप व्रज रीति–नीतिका अवलम्बनकर श्रीराधाकृष्ण–युगलके अनुरागमय भजन करनेकी तीव्र लालसा है, उन भक्तजनोंको मनःशिक्षाके साथ इस भजनदर्पण नामक भाष्यका मन लगाकर प्रीतिपूर्वक अवश्य ही पाठ करना चाहिये।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर कृत संस्कृत–बँगलामिश्र 'भजनदर्पण' भाष्यकी हिन्दी भाषामें 'दिग्दर्शिनीवृत्ति' सम्पूर्ण हुई।

॥ग्रन्थ समाप्त॥